www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI   R. N. NO. 1/57   ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, १०   जनवरी – 2017

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्रीकृष्ण गोयल	नव वर्ष का महत्त्व	लेख	२
श्री वीरेन्द्रनाथ भार्गव	वंदे मातरम् की सार्थकता	लेख	४
महात्मा चैतन्यमुनि	कृण्वन्तो विश्वमार्यम्-स्वमार्यम्	लेख	७
डॉ० महेश सिंह यादव	ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय	लेख	१२
श्री रामशरण युयुत्सु	मनुष्यता को सबसे बड़ा खतरा	लेख	१६
डॉ० उमा रानी	भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता	लेख	१९
डॉ० ज्योति वर्मा	शब्द भी जीवन निर्माण में सहायक	लेख	२२
श्री महेन्द्र साइजी माकिनो	बालक इसिदोमारू: जापान की एक प्राचीन करुण दंत-कथा	लेख	२५
डॉ० आदित्य आंगिरस	कबीर काव्य में सामाजिक अवधारणा एक विश्लेषण	लेख	३०
प्रो० राजेन्द्र कुमार	कबीरवाणी और गोरखवाणी में समानता	लेख	३४
श्री नवीन शर्मा	श्रीमद्भागवतपुराण के ज्ञान-यज्ञ का सामाजिक वैशिष्ट्य	लेख	३८
डॉ० सरिता यादव	आधुनिक उपन्यास द्वासुपर्णा में वर्णित संस्कृति	लेख	४२
श्री नरेश कुमार	हठयोगी के लिए स्थान तथा आहार	लेख	४६
	संस्थान-समाचार		४८
	विविध-समाचार		५०

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६५ } होश्यारपुर, पौष २०७३; जनवरी २०१७ { संख्या १०

ये नदीनां संस्रवन्ति
उत्सासः सदमक्षिताः।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्
धनं संस्रावयामसि।।
(अथर्व. १.१५.३)

(ये) जो नदियों के (उत्सासः) सोते (सदम्) सदा (अक्षिताः) अक्षीण रहते (और भरपूर होते) (संस्रवन्ति) बहते हैं, हम (तेभिः सर्वैः) उन सब(की धाराओं के समान बहने वाली) (संस्रावैर्) धाराओं (के रूप में) (धनं) धनराशि को अपनी ओर (संस्रावयामसि) बहा कर ले आते हैं।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

नव वर्ष का महत्त्व

– श्रीकृष्ण गोयल

हमारे वर्ष का प्रारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। इस दिन की विशेष महत्ता है। कहते हैं कि इस दिन ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना प्रारंभ की थी। इसी दिन भगवान् के आदि-अवतार मत्स्यावतार का प्रादुर्भाव हुआ था। कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि सतयुग का प्रारंभ इसी दिन को हुआ था। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सम्राट् विक्रमादित्य के सम्वत्सर का प्रथम दिन भी यही है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नवरात्रे मनाये जाते है अष्टमी को दुर्गा-अष्टमी मनाई जाती है, लोग व्रत रखते हैं, पूजा पाठ करते हैं, माता के जागरण किए जाते हैं। नवमी को भगवान् राम का जन्मदिन धूमधाम से मनाया जाता है। इन दिनों मौसम भी सर्वश्रेष्ठ होता है।

वास्तव में भारतभूमि तपोनिष्ठ भूमि है। हमारे ऋषि-मुनियों के चिन्तन के अनुसार, जीवन का लक्ष्य भोग नहीं है अपितु अपने शरीर, प्राण, हृदय तथा मन को संयमित करके ध्यान तथा एकाग्रता द्वारा निरन्तर प्रभुप्रेम, सुन्दरता, दिव्य इच्छाशक्ति, ज्ञान तथा कर्मकुशलता प्राप्त होते हैं। मनुष्य अपने प्रत्येक कर्म को निष्कामभाव से बिना फल की आकांक्षा किए सम्पूर्ण श्रद्धा से ईश्वर की सेवा करता है जिससे सभी का कल्याण एवं प्रगति होती है। जीवन का प्रत्येक पल ब्रह्मयज्ञ होता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, यज्ञ आपसी आदान-प्रदान है, मिलजुल कर काम करना सबसे महान् यज्ञ है। शुद्ध प्रेम यज्ञ है, प्राणायाम यज्ञ है, भगवान् का जप परम यज्ञ है। नर्व वर्ष का संकेत है कि हमारा जीवन निरन्तर यज्ञमय बना रहे। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा ध्यानयोग सभी महान् यज्ञ के विभिन्न-विभिन्न रूप हैं। हम सभी योगों का समन्वय करके अपने जीवन को यज्ञमय बनायें तो यह क्रम निरन्तर चलता रहेगा। हमारे देश की समस्त व्यवस्था जैसे त्यौहार, मन्दिर, तीर्थ तथा अन्य उपक्रम जीवन को परमपिता परमात्मा से जोड़ने के सूक्ष्म प्रतीक हैं। पृथ्वीमाता, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चांद, सितारे जो एक नियम से अपना काम कर रहे हैं, हमें पुकार रहे हैं कि हम भी अपने

www.thearyasamaj.org

श्रीकृष्ण गोयल

समस्त विकारों को समाप्त करके, अपने आप को शुद्ध करके परमात्मा से तथा प्रकृति माता से समन्वयात्मक सम्बन्ध स्थापित करके समस्त कालिमाओं को भस्मीभूत करें। ज्ञान की अग्नि को प्रदीप्त करना ही नव वर्ष को मनाने का सबसे अच्छा तरीका है।

हमारी परमपिता से प्रार्थना है कि हमारी सोई हुई आत्मा को जागृत करें, हमारे अज्ञान-जनित काम, क्रोध, मोह,लोभ, तथा अहंकार को सम्पूर्णत: समाप्त करें। हम सूर्य भगवान् की तरह शुद्ध होकर आनंद-प्रेम तथा शान्ति के परमात्मा की सेवा करें, जिससे सभी का कल्याण तथा सर्वांगीण प्रगति हो। हमारी समझ के अनुसार, नव वर्ष का विशेष महत्त्व यह ही है, कि हम अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर निरन्तर प्रगति करें, जिससे यह नव वर्ष परम मंगलमय तथा कल्याणकारी एवं शुभ हो।

नववर्ष की जय हो,
धरती माता की जय हो,
परमपिता की जय हो।

३०७ बी, पॉकेट-II, मयूर विहार, फेज-१, दिल्ली-११००९१
फोन नं० ०११-२२७१४०४४, ०११-२२७५१८०६

www.thearyasamaj.org

वंदे मातरम् की सार्थकता

–श्री वीरेन्द्रनाथ भार्गव

वैदिक काल से भारतीय जनमानस में मातृवंदना की परम्परा का निर्वाह होता रहा है। देवासुर-संग्राम में असुरों को निर्णायक पराजय देने वाली देवी दुर्गा और केनउपनिषद् में वर्णित देवी हेमवती के द्वारा धरती पर आत्मविद्या का प्राकट्य इस मातृवंदना का सार्थक प्रमाण हैं। अनेक वैदिक मंत्रों में मातृ-(जननी, जन्मभूमि, भारतभूमि तथा पृथ्वी) भाव की केन्द्रित भावना को व्यक्त किया गया है। आज भी जयमाता दी (जय माता की), वंदेमातरम् और 'भारतमाता की जय' जैसे उद्घोष हृदय में हिलोर उत्पन्न कर देते हैं। स्वाधीनतासंघर्ष हेतु शक्ति-उपासना और मातृवंदना से जुड़े अनेक ऐतिहासिक उदाहरण प्रेरणादायी हैं। विदेशीमूल के मुगल बादशाह अकबर और स्वदेशी मूल के महाराणा प्रताप के मध्य संघर्ष में मातृसम्मान के भाव ने निर्णायक भूमिका निभाते हुए महाराणा प्रताप को संबल प्रदान किया था। अकबर के विरुद्ध संघर्ष करते हुए एक अवसर पर महराणा प्रताप ने अकबर को आधीनता स्वीकार करने के लिए पत्र लिखा था जिसे अकबर ने सारे दरबार को सुनाया था। अकबर के दरबार में बीकानेर राज्य का राजकुमार पृथ्वीराज राठौड़ महाराणा प्रताप का प्रशंसक था और उससे सहन नहीं हुआ कि महाराणा ऐसा आधीनता हेतु पत्र लिख सकते हैं। उसने अकबर से पत्र की सत्यता जानने हेतु स्वयं महाराणा से उत्तर मांगने की अनुमति पाकर महाराणा को पत्र लिखा जिसका प्रथम शब्द 'माता' के गौरव को समर्पित करते हुए था। यथा-

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझके जाण सिराणै सांप।।

उस पत्र को पाकर महाराणा प्रताप फड़क उठे थे और उन्होंने अकबर को कथित आधीनता का पत्र लिखने से इन्कार कर दिया था।

सन १७७० में भारत के बंगाल भूभाग में भयंकर अकाल पड़ा था और बंगाल के मुसलमान शासक-हाकिमों ने हिंदू-प्रजा पर क्रूरतापूर्वक अत्याचार किये जिसके फलस्वरूप सन १७८० के लगभग संन्यासियों के नेतृत्व में जनता ने विद्रोह कर दिया था। इस विद्रोह ने मुसलमान शासकों के साथ-साथ उनके सहयोगी रहे अग्रेजों को पराजित किया था। उस जनविद्रोह की सफलता के पीछे 'ॐ! वंदे मातरम्' का उद्घोष था। यह उद्बोधन ढाका (बांग्लादेश) के रमना नामक स्थान पर कालीबाड़ी के किसी पुजारी अथवा

www.thearyasamaj.org

श्री वीरेन्द्रनाथ भार्गव

संन्यासी ने सभी को एक माता की सन्तान मानते हुए ॐ! वंदे मातरम् के मंत्रोच्चार से देशभक्त स्वतंत्रता-सेनानियों के हृदय में शक्ति-संचार किया था। वंदे मातरम् शब्द पर आधारित गीत को १८७५ में बंगाल के श्री बंकिमचंद्र चटर्जी ने लिखा था, जिसका उन्होंने अपनी रचना आनंदमठ में समावेश किया। १८५७ के विफल भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के पश्चात् अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों पर किये गए अत्याचारों को श्री बंकिम ने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। संयोगवश १८५८ में उन्हें अंग्रेज सरकार में डिप्टी मैजिस्ट्रेट के पद पर कार्य करने का अवसर मिला और पद पर रहते हुए उन्होंने सरकारी दस्तावेजों-गजेटियरों में बंगाल के अकाल और १७८० के संन्यासी-विद्रोह से जुड़े सत्यों-तथ्यों का अध्ययन किया। उनके प्रतिफलस्वरूप बंकिम बाबू के द्वारा वंदेमातरम् गीत और आनंदमठ रचना का सृजन हुआ। प्रसंगवश वंदेमातरम् गीत में भाव, शब्द और संगीत की एकलयता देने की एक घटना है कि वर्षाकाल में गंगातट पर किसी भवन में बंकिम बाबू बैठे हुए थे और आंतरिक अशांत-अतृप्त भावना में डूबे हुए थे। अचानक उनके कानों में गंगा में नौका में जाते हुए मांझी के मीठे स्वरों की लहरी टकराई जिसका भावार्थ था कि मां दुर्गा और गंगा को प्राण समर्पण का समय आ चुका है यथा-

साधो आछे, मा, मने
दुर्गा बले प्राण त्यजिब जाह्नवी जीवने।।

बंकिम बाबू का हृदय झूम उठा और मातृभूमि का अभिनंदन गीत फूट उठा। जो वन्दे मातरम् के रूप में सर्वत्र विख्यात है-

वंदेमातरम् ! सुजलां सुफलां मलयज-
शीतलाम् सस्य-श्यामलां मातरम्।।

आनंदमठ के प्रकाशन होने के पश्चात् अंग्रेजों ने वंदेमातरम् का विरोध करने की भरपूर चेष्टाएं की और मुसलमानों को भड़काने की भी कोशिश की कि यह हिन्दुओं की मुसलमानों पर विजय का गीत है इत्यादि। किन्तु वंदेमातरम् गीत की ख्याति स्वतः बढ़ती गई। अंग्रेज वाइसराय लार्ड कर्जन बंगाल का १९०५ में विभाजन करने का प्रस्ताव लाया जिससे सभी बंगवासी व्यथित हो गए। ६ अगस्त १९०५ को कलकत्ता के टाऊनहॉल के बाहर विशाल भीड़ इकट्ठा हुई और सभी दुःखी तथा असमंजस में थे कि अचानक एक कोने से किसी व्यक्ति का ओजस्वी स्वर गूंजा- वंदेमातरम्! वंदेमातरम्! यह सुनकर उपस्थित हजारों कंठों से एकसाथ गगनभेदी स्वर में वंदेमातरम् गूंज उठा। वहां उपस्थित छात्र अपने समूह बनाकर पूरे कलकत्ता नगर की गली-गली में वंदेमातरम् गाते हुए चल पड़े। यह गूंज फैलते-फैलते पूरे भारत में छा गई। विगत १४० वर्षों में इस गीत/शब्द से जुड़े असंख्य प्रकरण हैं जो आत्मोत्कर्ष से लेकर आत्मोत्सर्ग तक ले जाने वाला प्रचंड घोष रहा है। कुछ रोचक घटनाएं यहां प्रस्तुत हैं यथा-१४ अप्रैल १९०६ को पूर्वी बंगाल के बारीसाल नामक शहर में वंदेमातरम् गायन पर अंग्रेजों के

www.thearyasamaj.org

द्वारा प्रतिबंध लगाने के उपरांत भी उस आदेश की अवहेलना करते हुए हजारों बच्चे, स्त्री-पुरुष वंदेमातरम् गाते हुए सड़क पर चले। अंग्रेजों की पुलिस ने उन निहत्थे निरपराध नागरिकों पर क्रूरतापूर्वक लाठियां चलाकर उन्हें खून से रंग दिया। उन लाठियों से घायल और पिटने वालों में विश्वविख्यात ऋषि अरविंद घोष भी थे। भारत के इतिहास में इसे 'पहला लाठीचार्ज ' कहा जाता है। एक अन्य घटना में १२ फरवरी १९३४ को चटगांव में सूर्यसेन नामक क्रांतिकारी को मध्यरात्रि में फांसी के लिए जेल में ले जा रहे थे कि अचानक वह जोर से चिल्लाया 'वंदेमातरम्'। यह सुनकर सारे कैदी जाग गए और सारा जेल वंदेमातरम् से गूंज उठा। पुलिसवालों ने सभी वंदेमातरम् बोलने वाले कैदियों को भरपूर मारा और सूर्यसेन तो इतना अधिक घायल हो गया कि वह चेतनाहीन हो गया तथा उसी स्थिति में उसे फांसी दे दी गई। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में कांग्रेस पार्टी ने वंदेमातरम् गीत को अपनाया। सन् १९२३ के कांग्रेस के काकीनाडा सम्मेलन में अध्यक्ष मौलाना मौहम्मद अली ने वंदेमातरम् को इस्लाम विरोधी बतलाया। सन १९२४ में जिन्ना ने भी इसे इस्लाम विरोधी बतलाया जिससे अनेक मुसलमान वंदेमातरम् विरोधी हो गए। अंततः भारत से अलग मुसलमान राष्ट्र पाकिस्तान बन गया। अक्तूबर १९३७ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री मौलाना आजाद, पण्डित जवाहर लाल नेहरू और श्री सुभाषचंद्र बोस ने वंदेमातरम् को राष्ट्रगीत बनाने हेतु संयुक्तरूप से स्वीकृति दी। किन्तु विडंबना है कि यह भारत का राष्ट्रगीत नहीं बना। क्या वंदेमातरम् इस्लाम विरोधी है? इसके पक्ष और विपक्ष में समय-समय पर स्वर उठते रहे हैं। अभी कुछ दिन पहले भारत के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीमकोर्ट) के बैंच ने एक ऐतिहासिक फैसला दिया है कि देश के प्रत्येक सिनेमाघर में फिल्म प्रारम्भ होने से पहले स्क्रीन पर भारतीय ध्वज को दिखाते हुए वंदेमातरम् राष्ट्रगान को गाया जाय, उस समय केवल शारीरिक रूप से अस्वस्थ तथा दिव्यांगों को छोड़कर सभी दर्शक खड़े हों। परन्तु इस निर्णय पर एक लंबी चर्चा चल रही है। उस पर शंकाए उत्पन्न की जा रही हैं। आवश्यकता है कि इस शंका का एकीकृत निर्णायक समाधान हो जो कि भारतीय संविधान के सर्वोच्च 'सत्यमेव जयते' के अनुरूप हो। विश्वास है कि ऐसा एकीकृत समाधान सामूहिक वंदना की भावना को पुनः आधार प्रदान करेगा जिसके लिए वैदिक काल से चली आ रही प्रार्थना का प्रचलन है-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम देव देव।।इति

-१२, महावीर नगर, टोंक रोड, जयपुर-३०२०१८

www.thearyasamaj.org

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्-स्वमार्यम्

- महात्मा चैतन्यमुनि

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने व्यक्तिगत सुख-समृद्धि एवं आनन्द, पारिवारिक सहृदयता, सामाजिक समरसता तथा विश्वबन्धुत्व हेतु एकसूत्रीय कार्यक्रम दिया- **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**। वेद हमें यही प्रेरणा देते हुए कहता है-**इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽरावणः।।** (ऋ० ९-६३-५) अर्थात् परम एश्वर्यशालियों और सत्कर्मों में निपुण लोगों को (तथा विचार एवं भावनाओं को) बढ़ाओ तथा पापियों, कृपणों और ईर्ष्यालुओं का नाश करो। समाज में तो इस भावना को कार्यान्वित करना ही है मगर इसी भावना को हमें अपने स्वयं के जीवन में भी चरितार्थ करने की आवश्यकता है। आर्यत्व श्रेष्ठता का प्रतीक है। श्रेष्ठ आचरण वाले व्यक्ति को ही हम आर्य कह सकते हैं। व्यक्ति को अपने चरित्र के साथ आर्यत्व को जोड़ने की आवश्यकता है। ऐसे श्रेष्ठ शीलयुक्त व्यक्ति के सम्बन्ध में महाभारतकार का कथन है-

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं,
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं,
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः।।
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं,
चान्यस्य दुःखे भवति विषादी।
दत्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं,
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः।।

अर्थात् जो शान्त हुए वैर को फिर नहीं भड़काता, जो गर्व नहीं करता, जो अपने को हीन भी नहीं जताता, 'मै विपत्ति में पड़ा हूँ' ऐसा कहकर जो अधर्म-कार्य नहीं करता, उसे आर्यजन अत्यन्त आर्यशील-श्रेष्ठ आचरण वाला कहते हैं। जो अपने सुख में फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता, जो दूसरे के दुःख में दुःखी हो जाता है, जो दान देकर बाद में पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुष आर्यशील कहलाता है। इस प्रकार के शील एवं स्वभाव का व्यक्ति ही आर्य है, श्रेष्ठ है। वही अपने जीवन को समग्र रूप से सार्थकता प्रदान कर सकता है तथा औरों को भी सुखी, समृद्ध और

www.thearyasamaj.org

पुण्यात्मा बना सकता है। ऐसा आर्य ही जीवन में सुक्रतु बनता है अर्थात् उसका स्वभाव पुण्यकर्म करने का ही बन जाता है।

हमारा वर्तमान विकट परिस्थितियों से गुजर रहा है। वैदिक संस्कृति के भव्य महल की दीवारें बुरी तरह से चरमरा रही हैं.....व्यक्ति स्वार्थ की पगडण्डियों में भटक कर इस पावन धरा को नरक बना रहा है....सामने प्रतिकूलताएं ही प्रतिकूलताएं दिखाई देती हैं मगर केवल परिस्थितियों को कोसनाभर कायरों का काम है। आर्य वह है जो आगे बढ़कर विकट से विकट परिस्थिति को भी अपनी बुद्धि और सामर्थ्य से बदल कर रख देता है। इसलिए आज हमें और भी अधिक दुगने उत्साह से आगे बढ़ना है। विशेषतः युवावर्ग को स्वयं आर्यत्व से सुसज्जित होकर कार्यक्षेत्र में उतरकर इस विनाशकारी प्रवाह को सही दिशा देकर समूचे विश्व में आर्य-संस्कृति का परचम लहराना है मगर यह बात सदा स्मरण रहे कि जब तक हम स्वयं नहीं सुधरेंगे तब तक जगत् को सुधारने की कल्पना दिवास्वप्न के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। संसार को आर्यत्व से परिपूर्ण करने का अभियान स्वयं से आरंभ करना होगा।

वेद में आर्य अर्थात् श्रेष्ठ एवं सुक्रतु बनने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है- **ओम् त्रिणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्। मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः।।** (सा० १०१५) मन्त्र में सुक्रतु बनने के लिए मुख्यतः पहली बात कही गई कि-**त्रिणि त्रितस्य धारया**, जो व्यक्ति जीवन में तीन बातों को धारण कर लेता है, वह सुक्रतु बन जाता है। ऐसी बहुत-सी तीन बातें हैं मगर यहां हम वेद के एक मन्त्र की चर्चा करते हैं-**ओम् यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः। अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृंचन्त्युपरस्य योनौ।।** (ऋ०१-७९-३) अर्थात्-जो मनुष्य (**यदीमृतस्य पयसा पियानो**) वेदवाणी रूपी गौ के दुग्ध का पान करता है, (**रजिष्ठैः**) ऋजुतम, छल-छिद्र से शून्य अर्थात् सरलता का जीवन जीता है, (**अर्यमा**) कामादि शत्रुओं का नियन्त्रण करता है, (**वरुणः**) द्वेष का निवारण करता है, (**मित्रः**) सबके साथ स्नेह करता है, (**परिज्मा**) सब क्षेत्रों में अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, वही (**उपरस्य योनौ**) धर्ममेध के उत्पत्ति स्थान में (**त्वचं पृंचन्ति**) स्पर्श को प्राप्त करते हैं।

मन्त्र में मुख्यरूप से अर्यमा, मित्र और वरुण इन तीन गुणों की चर्चा की गई है जिनके कार्यन्वयन से हम सुक्रतु, श्रेष्ठ एवं आर्य बन सकते हैं मगर ऐसा बनने के लिए भी हमें-**ऋतस्य**-अर्थात् वेद स्वाध्याय करके सत्य-ज्ञान के साथ जुड़ना होगा तथा **रजिष्ठैः**

www.thearyasamaj.org

पथिभिः अर्थात् छल-छिद्ररूपी व्यवहार को त्यागकर ऋजु-मार्ग के पथिक बनना होगा। वास्तव में ऐसा व्यक्ति ही **अर्यमा**-कामादि शत्रुओं का नियन्त्रण करता है अर्थात् उसका जीवन संयमपूर्ण हो जाता है तथा वह धर्ममेध जैसी उच्च स्थिति को प्राप्त करने में भी सफल हो जाता है। 'अर्यमा' वह व्यक्ति है जिसमें दान देने की भावना प्रबल होती है (**आर्यमेति तमाहुर्यो ददाति।** (तै०१-१-२-४) । अर्यमा के अन्य अर्थ भी हैं-संयमशील अर्यमा है, विद्वानों का सम्मान करने वाला अर्यमा है और (**अरीन् यच्छति**) शत्रुओं का नियमन व दमन करने वाला भी अर्यमा है। काम शरीर का, क्रोध मन का और लोभ बुद्धि का विनाश करता है मगर अर्यमा इन सब पर विजय प्राप्त कर लेता है। सुक्रतु बनने के लिए हमें **मित्रः** अर्थात् सबके साथ स्नेह करने की भावना को भी प्रबल बनाना होगा। परमात्मा का एक नाम मित्र इसीलिए है कि वे सभी से समान-रूप से स्नेह करते हैं। हमें भी परमात्मा का यह गुण धारण करना चाहिए क्योंकि मित्रता से ही व्यक्ति सब प्रकार की उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है इसके विपरीत अमैत्री-भाव से व्यक्ति का चतुर्दिक् पतन हो जाता है क्योंकि ईर्ष्या-द्वेष में न तो समृद्धि ही है और न शान्ति ही। मैत्रीभाव से ही परिवार, समाज एवं विश्व में सामंजस्य और समरसता की भावना स्थापित हो सकती है अन्यथा अन्य कोई और दूसरा उपाय ही नहीं है।

सुक्रतु का तीसरा गुण है-**वरुण**। वरुण वह है जो द्वेष का निवारण करता है। अन्यत्र कहा गया है- **वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः**। द्वेष-भावना का त्याग करके हम श्रेष्ठ बन सकते हैं, ईर्ष्या-द्वेष व्यक्ति की मनन-शक्ति को मार देते हैं। व्यक्ति को स्मरण रखना चाहिए कि किसी को गिराकर हम ऊपर नहीं उठ सकते, बल्कि स्वयं पुरुषार्थ करके वैसा बनने का संकल्प लेना चाहिए। वेद कहता है (अथर्व०६-१८-२) कि दूसरे के अभ्युदय को सहन न कर पाना ईर्ष्या है, वेद में ईर्ष्या को 'हृदय-अग्नि' (अथर्व०६-१८-१)कहा गया है। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य तथा धर्म-अधर्म को भूल जाता है, उसमें न्याय-वृत्ति का अभाव हो जाता है और वह किसी प्रकार की लोक-लाज की भी परवाह नहीं करता है। वेद में कहा गया है कि ऐसा व्यक्ति - **मृतमनस्तर**, मृत-मना हो जाता है अर्थात् मिट्टी में जैसे मनन-शक्ति नहीं होती, वह भी ऐसा ही बन जाता है। यही नहीं वह '**मम्रुष**' अर्थात् मरे हुए के समान हो जाता है क्योंकि ईर्ष्या उसकी मनन-शक्ति को मार देती है......उसकी आत्मा मानों मर जाती है। इसलिए प्रभु कहते हैं कि इस द्वेष-भाव से व्यक्ति को मुक्त हो जाना चाहिए क्योंकि इस द्वेष-भाव के छूटने से

www.thearyasamaj.org

पाप-वृत्ति भी छूट जाती है (अथर्व० ४-३३-७)। मनसा-परिक्रमा के मन्त्रों में इसी द्वेष-भाव से छूटने की प्रार्थना की गई है......वेद में उस वरुण प्रभु से तीन पाशों से मुक्त करने की प्रार्थना की गई है- **उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।।** (ऋ ०१-२४-१५, यजु० १२-१२, अथर्व ०७-८३-३, सा० पू० ०६-३-१०) इस मन्त्र में-**अनागसः** पापों से मुक्त होने तथा **अदितये**-पूर्ण स्वस्थता एवं मोक्ष हेतु प्रार्थना की गई है। ये बन्धन कौन-कौन से हैं, इस पर चिन्तन करना चाहिए। प्रथम बन्धन है-उत्तम बन्धन अर्थात् ऊपर का बन्धन। कारण शरीर का बन्धन, द्यौ अर्थात् हमारी बुद्धि का बन्धन तथा सत्वगुण का बन्धन है। दूसरा मध्यमं बन्धन है-राजसिकता का जिससे हमारे मन और प्राण बन्धे हुए हैं यह रज और सूक्ष्म शरीर का बन्धन है जो हमें कर्त्तापन के बन्धन में बान्धता है-**रजः कर्मणि भारत**। तीसरा अधम बन्धन है-नाभि से नीचे स्थूल शरीर और तामसिकता का बन्धन। उत्तम बन्धन सच्चे ज्ञान के अभाव के कारण होता है, मध्यम-राग-द्वैष, काम-क्रोध आदि के कारण और अधम बन्धन-तामसिकता के कारण तथा शरीर की सीमा में रहकर भोग भोगने आदि के कारण एवं आलस्य व प्रमादादि के कारण होता है। हमें इन तीनों ही बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। इन बन्धनों के कट जाने के बाद हम-**उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे।** (ऋ०१-२५-२१) उत्तम जीवन वाले बन जाएंगे। यही नहीं इससे-**आभृतम्-माधुर्य** (ऋ०१-२५-१७) हम में माधुर्य ही माधुर्य भर जाऐगा। महर्षि दयानन्द जी ने 'वरुण' का अर्थ किया है- **वृणोति भक्तान् व्रियते वा भक्तैः।** (जिसे भक्त संसार के असंख्य आकर्षणों को छोड़कर चुनते हैं)

इस प्रकार के गुणों को धारण करके जब व्यक्ति सुक्रतु बन जाता है तो वह-**परिज्मा- (परितः गन्ता)** अर्थात् सब क्षेत्रों में अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला बन जाता है और ऐसे कर्मशील व्यक्ति को ही परमात्मा प्रेम करते हैं। वेद में कहा गया है-

ओ३म् हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता
वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।।

(ऋ० ४-४०-५, यजु० १०-२४)

भावार्थ- जो जीव उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव वाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल व्यवहार करते हैं वे ही परमेश्वर के साथ आनन्द को भोगते हैं। कठोपनिषद् में

www.thearyasamaj.org

यमाचार्य भी आत्मा का उपदेश देते हुए कुछ ऐसा ही कहते हैं कि जो अजन्मा-साधु इस शरीर को ग्यारह द्वारों की नगरी समझकर यह चिन्तन करता है कि जैसे ये द्वार बाहर को खुलते हैं बैसे ही अन्दर को भी, वह अपने अनुष्ठान से इस संसार में शोक में नहीं पड़ता.....सदा के लिए मुक्त हो जाता है। यह जीवात्मा 'हंस' है, 'वसु' है, 'होता' है और 'अतिथि' है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह व्यक्ति के विकास का क्रम है। हंस जिस प्रकार शुद्ध-पवित्र स्थान में रहता है, वैसे हंस-रूप जीव भी शुद्ध ब्रह्म में निवास करता है। वसु जैसे अन्तरिक्ष में निवास करते हैं, वैसे ही यह वसु-रूप जीव हृदय के अन्तरिक्ष में निवास करता है, होता जैसे वेदी के सामने बैठकर अग्निहोत्रादि करता है, वैसे होतृ-रूप जीव तीनों नचिकेत-अग्नियों का चयन करता है और अतिथि जैसे दुरोण-आश्रम की कुटिया को अपना समझकर नहीं बैठ जाता बल्कि अतिथि के रूप में रहता है, जीव भी इस कुटिया को-शरीर को सदा के लिए अपना समझकर नहीं बैठता बल्कि अतिथि बनकर उत्तरोत्तर विकास करता है।

उपरोक्त कथन को हम इस प्रकार से भी समझ सकते हैं कि वह नर-देह में निवास करता है, नर से अच्छे वर-देह में निवास करता है, उससे भी अच्छे ऋत-देह में वास करता है और फिर उससे भी उत्कृष्ट व्योम-देह में वास करता है। विद्वानों ने इसकी संगति चार-आश्रमों के साथ भी लगाई है-**१. हंसः शुचिसद्**- इसे ही नरदेह कहा गया है। आचार्य के गर्भ में स्थित होकर ब्रह्मचारी शुचिता को प्रमुखता देकर ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण होकर हंस जैसा नीर-क्षीर विवेकी बन जाता है। **२. वसु अन्तरिक्षसद्**- इसे वरदेह कहा गया है। जैसे अन्तरिक्ष में वसु रहते हैं वैसे ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में अपना एक संसार बसाता है तथा अन्यों को भी सहयोग प्रदान करके बसाता है मगर फिर वह वानप्रस्थी होकर गृह-त्याग कर देता है, **३. होता वेदिसद्**-इसे ही ऋत-देह कहा गया है। समाज एवं संसार के कल्याण के लिए वह स्वयं अपनी आहुति ही दे देता है क्योंकि वह इस सत्य तक पहुँचने की यात्रा पर निकल पड़ता है कि ब्रह्म ही सत्य है। इस विवेक से ही ऋत के साथ जुड़ जाता है और फिर- **४. अतिथिः दुरोणसद्**-इसे ही व्योम-देह कहा गया है अर्थात् वह वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा का पूर्णतया त्याग करके संन्यासी हो जाता हैं।

महर्षि दयानन्द धाम, महादेव, सुन्दरनगर, जिला मण्डी, हि०प्र०-174401

www.thearyasamaj.org

ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय

– डॉ० महेश सिंह यादव

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रधान कवि कबीर का नाम अत्यन्त आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। कबीर राम के भक्त हैं और राम के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित हैं। राम का अलौकिक, अद्वितीय एवं निःस्वार्थ प्रेम ही कबीर के जीवन की कसौटी है। कबीर महान् हैं क्योंकि उन्होंने प्रेम को जीवन में सबसे ऊँचा दर्जा दिया है। प्रेम ही जीवन का सकारात्मक स्वरूप है। प्रेमानुभूति ही जीवन की परमावस्था है, 'प्रेमानुभूति की चरमावस्था में प्रिय प्रेमी में और प्रेमी प्रिय में समा जाते हैं, उन दोनों का अहम् एक हो जाता है। भक्त भगवान् से और भगवान् भक्त से तादात्म्य का अनुभव करता है। 'समुद्र' और 'बूंद' के रूपक से कबीर ने इसी प्रेमाद्वैतता का निरूपण किया है। बूंद अपने सीमित अहम् को समुद्र में अनुभव करने लगती है। जीव का अपने भगवान् के अंश और अंशी से अभिन्न रूप में अनुभव आत्मानुसंधान रूप भक्ति है। उसमें समुद्र की असीमता से ब्रह्म के सविशेष रूप तथा बूंद और समुद्र के परस्पर एकाकार हो जाने से जीव की स्वरूपाद्वैत की अनुभूति भी लक्षित है। इससे स्पष्ट है कि कबीर की अनुभूति-भूमि सविशेष ब्रह्म के प्रति प्रेम है।[१]

कबीर भगवान् से प्रेम करते हैं, उनका प्रेम अलौकिक है। वह न खेत में पैदा होता है, न बाजार में बिकता है। उस प्रेम को वही प्राप्त कर सकता है, जो अपना सिर काटकर भगवान् को समर्पित कर दे, जो समर्पित नहीं कर सकता, उसे प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता है। उस प्रेम में राजा और प्रजा में कोई अन्तर नहीं है। प्रेम के लिए राजा को भी और प्रजा को भी अपना सिर काटना है-

प्रेम न खेतौ ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाइ।
राजा-परजा जिस चहै, सीस देइ ले जाई।।[२]

कबीरदास ने अनुभव किया है कि यह घर प्रेम का है, मौसी का घर नहीं है, इस प्रेम के घर में वही प्रवेश कर सकता है, जो अपना सिर उतारकर अपने हाथ में ले ले अर्थात् अपना अहंकार मिटा दे-

१. डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र: कबीर ग्रन्थावली, पृ. २४

२. वही, सूरातन कौ अंग, दोहा संख्या-२१, पृ. १७५

www.thearyasamaj.org

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै हाथ करि, सो पैठे घर माहिं।।[३]

कबीरदास के अनुसार जिस हृदय में प्रेम का संचार नहीं होता है, वह हृदय और शरीर मरा हुआ है-

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिनु प्रान।।[४]

कबीर ने प्रेम करने वाले भक्त को शूरवीर कहा है। वह अपने भगवान् के लिए सब कुछ न्योछावर कर देता है-

सूरा तवहीं परखिये, लड़ै घड़ी कै हेत।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत।।[५]

कबीरदास प्रेम के सच्चे पारखी हैं, उनका मानना है कि प्रेम की महत्ता तभी है जब स्वामी और सेवक का मन मिल जाय दोनों का एकाकार हो जाये, दोनों के मन में कोई भेद न रह जाय। चतुराई के लिए कोई जगह न हो, प्रेम में चतुराई नहीं रहती और न ही चतुराई में सच्चा प्रेम होता है।[६]

कबीर ने लिखा है कि जिस शरीर में भगवान् के प्रति प्रेम नहीं है, उस मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। जिसने प्रेम का अनुभव नहीं किया, उसका स्वाद नहीं लिया, उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर के मेहमान के आने-जाने के समान है। यह मेहमान जैसे आता है वैसे ही चला जाता है। अत: ईश्वर से प्रेम न करने वाले का इस जगत् में न वास्तविक सम्मान होता है, न उसे कुछ मिलता ही है।[७]

इस प्रेम में तभी स्थायित्व हो सकता है जब अहंकार मिट जाय, क्योंकि अहंकार और प्रेम दोनों एक साथ नहीं रह सकते है, जहां अहंकार है, वहां भगवान् नहीं होते अर्थात् वह हृदय प्रेमशून्य है, जहां भगवान् नहीं हैं, वहां अहंकार होता है।[८]

जिस हृदय में भगवान् के प्रति प्रेम होता है, उस में भगवान् के अतिरिक्त अन्य के लिए स्थान नहीं होता। प्रेमी कहता है कि-

नैना अंतरि आव तूं, ज्यूं हौ नैन झपेऊ।
ना हैं देखन और कू, ना तुझ देखन देउ।।[९]

कबीरदास कहते हैं कि जब आंखों में पीड़ा-लालिमा रहती है, तब उसमें काजल

---

३. बाबू श्यामसुन्दरदास: कबीर ग्रन्थावली: सूरातन कौ अंक, पृष्ठ-६९, दोहा संख्या- १९
४. राजेन्द्र सिंह: संत कबीर दोहावली, पृ. ७२
५. कबीर ग्रन्थावली: दोहा संख्या-९, पृ. ६९
६. वही, हेत प्रीति सनेह कौ अंग: दोहा संख्या-४, पृ. ६८
७. डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र: कबीर ग्रन्थावली, पृ. २४, दोहा संख्या-१७-१८
८. बाबू श्यामसुन्दरदास: कबीर ग्रन्थावली, परचा कौ अंक, दोहा संख्या-३५
९. वही, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग, दोहा संख्या-२

www.thearyasamaj.org

नहीं लगाया जा सकता है, उसी प्रकार जब हृदय में भगवान् विराजमान हैं, उनके प्रेम की लालिमा है तब विषय-वासनाओं या अन्य साधनाओं के लिए कहां स्थान है? उसमें काजलरूपी माया के आकर्षण कैसे समा सकते हैं?[१०]

कबीरदास का अपने इष्ट के प्रति अगाध प्रेम है, वे स्वयं को राम का कुत्ता मानते हैं। उसका नाम मोतिया है और गले में रस्सी है, भगवान् रस्सी पकड़कर जिधर खींचते हैं, उधर कबीर भक्त के रूप में प्रेम के वशीभूत होकर चले जा रहे हैं। प्रेम के कारण ही कबीर को कुत्ता बनना भी अच्छा लगता है। यहां कबीर का मन और राम का मन मिल चुका है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है-

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाम।
गले राम की जेंवरी, जित खेचैं तित जाऊँ।।[११]

कबीरदास ऐसे ही प्रेमी हैं, उनका प्रेम अलौकिक है, उन्होंने प्रेम में सबकुछ त्याग दिया है, इसीलिए कबीरदास लिखते हैं कि-

भ्रम का ताला लगा महले रे,
प्रेम की कुञ्जी लगाव।
कपट-किवड़िया खोल की री,
यहि विधि प्रिय को जगाव।
कहैं कबीर सुना भाई साधो,
फिर न लगै अस दाव।।[१२]

महाकवि कबीरदास ने इस शरीर को चुंदरी कहा है और यह चुंदरी रूपी शरीर प्रेम की बूंद में भीग रहा है। इसको वे बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि-

भीजै चुनरिया प्रेम-रस बूँदन।
आरत साज के चली है सुहागिन,
पिय अपने को ढूंढन।
काहे की तोरी बनी चुनरिया,
काहे को लगे चारो फूंदन।
पांच तत्व की बनी चुनरिया,
नाम के लागे फूंदन।
चढ़िगे महल खुलि गई रे किवरिया,
दस कबीर लागे झूलन।।[१३]

संत सिरोमणि कबीरदास ने लिखा है कि- प्रेम का प्याला पी लिंया और रोम-रोम रोमांचित हो उठा है, प्रेम के प्याला के अतिरिक्त और कुछ खाने की न आवश्यकता है, न इच्छा है। नाम के माध्यम से वह प्रेम

१०. डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र: कबीर ग्रन्थावली, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग, पृ.५, दोहा संख्या-४

११. वही, दोहा संख्या-१४, पृष्ठ-६१

१२. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पद-३८, पृ. २०१

१३. वही, पद-१८७, पृ. २५४

www.thearyasamaj.org

मिला है और उसे मैंने जी भरकर पी लिया है अब भगवान् के दीदार का मतवाला हूं यही प्रेम कबीर की मुक्ति का द्वार है-

कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर दिया लगाय।
रोम-रोम में रमि रहया, और अमल क्या खाय।
राता-माता नाम का, पीया प्रेम अधाय।
मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाय।।[१४]

उनकी रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट लिखा जा सकता है कि कबीर का व्यक्तित्व महान् है। उन्होंने जीवन में प्रेम को श्रेष्ठतम माना है और यह प्रेम अलौकिक है। इस प्रेम से ही संसार का कल्याण सम्भव है। प्रेम ही सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का आधार है। प्रेम ही वसुधैव कुटुम्बकम् की पृष्ठभूमि है। प्रेम ही 'परहितसरिस धर्म नहीं भाई' का केन्द्रबिन्दु है। यह प्रेम ही सर्वे भवन्तु सुखिनः का सार है। यह प्रेम ही सफलता का साधन है। यह प्रेम ही सम्पूर्ण जीवन के उत्थान, प्रगति, उन्नति की गाथा है। प्रेम से ही मनुष्य अपना जीवन सार्थक, सफल एवं समुन्नत बना सकता है। वह प्रेम भगवान् राम के प्रति प्रेम है। प्रेम सर्वस्व समर्पण का प्रतीक है। प्रेम अहंकारशून्यता का परिचायक है। प्रेम में द्वैत नहीं। जहां द्वैत है वहां प्रेम नहीं जहां प्रेम है वह अद्वैत है। उस अद्वैत के माध्यम से ही भक्त भगवान् तक पहुँच जाता है और तत्सम हो जाता है। इसीलिए कबीर कहते हैं कि-

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं चली तो मैं भी हो गई लाल।।

- आर०जी०एन०पी० कालेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर। मोबा:- ९४११२२६०९८

१४. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पद-२०१, पृ. २५९

www.thearyasamaj.org

मनुष्यता को सबसे बड़ा खतरा

– श्री रामशरण युयुत्सु

कहा नहीं जा सकता कि मनुष्य दुखी है या सुखी, क्योंकि विज्ञान ने मनुष्य के लिये अनेकों सुख-सुविधायें जुटा रखी हैं। पाताल से लेकर आकाश तक उसे कुछ भी अप्राप्य नहीं है। परन्तु किसी के पास बैठकर उसकी कोई रामकहानी सुने तो मनुष्यता पर दया आती है। वास्तव में मनुष्यों की दशा बड़ी करुणामय हो गई है। जिससे पूछो वही हताश व निराश प्रतीत होता है। विज्ञान कह रहा है- मैं मानव को सुखी बना रहा हूँ, पर देखा जा रहा है कि आज मानव खिन्न है। उसका मन अशान्त और दुविधाग्रस्त है। वह सदा मानसिक तनाव से घिरा रहता है।

धर्माचार्यों से पूछो तो वे कहते हैं कि मनुष्य ने धर्म को भुला दिया है। ईश्वर पर से आस्था मिटा दी है, सभी जगह तर्क-जाल का कुहरा छाया हुआ है। अर्थशास्त्रियों से पूछो तो, उन्होंने कहा कि धर्म कुछ नहीं है। आस्था धर्मान्धता है। पुनर्जन्म और कर्मफल की धारणाओं ने हमारी निजी शक्तियों व समाज को पंगु बना दिया है। आज मानव कर्म से भागकर भोग की ओर बढ़ रहा है। कहा नहीं जा सकता कि यह भोगवाद मनुष्य को कहा ले जायेगा, कौन से गर्त में धकेलेगा।

सोचता हूँ दु:ख क्या है और दुखी कौन है? यह सब कुछ स्वभाव व संस्कारों का ही कारण है, जब आदमी में काम या क्रोध का ताप आता है, तो स्वत: स्वभाव में पशुता आ ही जाती है। आत्म-हत्या, चोरी, डकैती, दुष्टता व दुश्चरित्रता आदि सभी इसके प्रमाण हैं। हम देखते हैं कि आज मानवता का पतन होता जा रहा है। मनुष्यता का सबसे बड़ा शत्रु है काम। मानव को सच्चे व शाश्वत, सुख से वंचित रखने वाली बुरी प्रवृतियों की जन्मदात्री काम-भावना ही है।

आज संसार में (भारत में विशेष) नित्य प्रति बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, उभरती हुई धार्मिक संकीर्णता, असहिष्णुता, हड़तालों-आन्दोलनों व तोड़फोड़ के दृश्य, मानव द्वारा मचाया हुआ कोलाहल, आदर्शों का पतन, बिगड़ते हुए नैतिक मूल्य और मिटती मर्यादाओं को

www.thearyasamaj.org

देखकर मनुष्यता का दम घुटता जा रहा है। मानव हर समय चिन्ताग्रस्त ही दिखाई देता है। विज्ञान की आज की प्रगति के भविष्य पर जब भी मानव चिन्तन-मनन करता है तो सिहर उठता है और चिल्लाना चाहता है। बस करो, अब बहुत हो चुका है, विनाश के लिये यह क्या कम है?

आज के वैज्ञानिक की याद आते ही हिरोशिमा की याद आए बिना नहीं रह सकती। यदि हमने अब कोई न्याययुक्त और दिव्य तरीका न निकाला तो निश्चय ही विनाश किसी दिन हमारा दरवाजा आ खटखटायेगा। इस धरा पर होने वाली सभी लड़ाई व झगड़ों का मूल कारण, मनुष्य की चारित्रिक दुर्बलता है। युद्ध की जो समस्या है, वास्तव में यह एक धार्मिक समस्या है, क्योंकि बाहर से हम सभी 'हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आपस में सभी भाई-भाई' का नारा तो देते हैं, परन्तु आत्मिक रूप से सोच भी नहीं पाते कि हम भाई-भाई और एक पिता की संतान कैसे हैं? इसके हल के लिये मनुष्य को आध्यात्मिक नवचेतना की तथा चारित्रिक उत्थान की आवश्यकता है।

जनसंख्या विस्फोट भी ऐटम और हाईड्रोजन बमों से कम नहीं है। विशेषज्ञों के अनुसार जनसंख्या प्रतिवर्ष ७ करोड़ की गति से बढ़ती जा रही है। जनसंख्या की वृद्धि से आर्थिक या अन्न संकट के कारण मनुष्य का शारीरिक-स्वास्थ्य बिगड़ता है।

वायुमंडल प्रदूषण, अन्य साधनों से विषैले तत्वों का फैलना, मनुष्यों के उच्छ्वास तथा शारीरिक गर्मी का प्रभाव बढ़ना, गली-सड़ी और रद्दी चीजों में अभूतपूर्व भयावह वृद्धि, पृथ्वी और खाद्य पदार्थों का मनुष्य के जीवन पर कुप्रभाव, कृत्रिम खादों द्वारा उपजाऊ-भूमि की क्षति देखकर, मानव के भविष्य पर दया आना स्वाभाविक ही है कि मानव-जीवन और कितने दिन का मेहमान है।

चलचित्र, अनेकों चैनल इत्यादि जो मनोरंजन की चीजें आज गरीब-अमीर, बच्चे-बूढ़े, जवानों को प्रभावित कर रहे हैं। चरित्रहीनता के दृश्य इस में देखे जा सकते हैं। सैंसर के होते हुए भी भ्रष्ट तरीकों से लोग अपना काम निकाल लेते हैं।

मुख्य मार्ग से भटकाने वाली पुस्तकों से, पत्र-पत्रिकाओं से, घातक ज्ञान-विज्ञान से, राजनैतिक व प्रशासनिक स्थिति से, साम्प्रदायिक पागलपन की महामारी से, क्रोध-हिंसा व अनुशासनहीनता की आग से मानव का भविष्य कितना भयानक बन गया है, इसे तो मंद से मंद बुद्धि भी जान सकते हैं।

धर्मग्रन्थों में मानवता के दस लक्षण बताये गये हैं- धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच,

www.thearyasamaj.org

इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध। १. धृति-स्थिर चित्तता एवं संतोष, २. क्षमा-किसी के अपकार करने पर भी अपकार न करना और उसके अपराध से अपने चित्त में कोई विकार उत्पन्न न होने देना, ३. दम-मन को विषयों से हटाकर आत्मा के अनुरूप कार्य करने का नाम दम है।, ४. अस्तेय-किसी भी परिस्थिति में चोरी न करना और दूसरे के धन को मिट्टी समझना।, ५. शौच- आत्मा और मन को स्वच्छ रखना। चित्त की निर्मलता से प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रिय विजय और फिर आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।, ६. इन्द्रिय-निग्रह- समस्त इन्द्रियों को विषय-भोग से हटाना, ७. धी- धी का अर्थ है बुद्धि, इन्द्रिय रूपी घोड़ों की रास बुद्धिरूपी सारथी के हाथ में होने से रथ सद्मार्ग पर चल सकता है।, ८. विद्या- आत्मज्ञान, विद्या ही मानवता का मार्ग प्रशस्त करती है।, ९. सत्य- योग दर्शन में वाणी और मन की यथार्थता को सत्य कहा गया है।, १०. अक्रोध- क्रोध की शून्यता ही अक्रोध है। क्रोध की उत्पत्ति काम से होती है।

यह विश्व किन्हीं शाश्वत नियमों के आधार पर चल रहा है। भले ही यहां प्रकृति के कुछ कार्य-कलाप अनियमित, अव्यवस्थित, असंगत, व क्रूर प्रतीत होते होंगे, परन्तु इस बात से शायद कोई अनभिज्ञ व्यक्ति ही इन्कार कर सकेगा कि इस अद्‌भुत संसार की प्रत्येक क्रिया के पीछे कोई न कोई नियम और कारण है। किन्तु बहुत से नियम ऐसे भी हैं जो अभी तक मानव के सीमित ज्ञान के घेरे से बाहर हैं। अध्यात्म-विद्या के आधार पर बताया जा सकता है कि सृष्टि के विनाश की घड़ी आने से पहले इसके क्या-क्या लक्षण होने लग जायेंगे। मनुष्य तो नासमझ है, परन्तु जब-जब धर्म की ग्लानी होती है, आसुरी लक्षणों की प्रधानता होती है तब महासंहार होता है। जिस भारत की धरती पर पहले देवता राज्य करते थे, वे अब कहां गये? अब दैवी-गुणों की सूची ही ग्रंथों में पढ़ने को मिलती है और देवी-देवताओं के केवल चित्र मात्र ही उपलब्ध होते हैं।

सभी मानव सुख-शांति चाहते हैं, परन्तु यदि उसमें दूसरों के प्रति सद्‌भावना, भाईचारा तथा आत्मिक प्रेम हो तभी ऐसा संभव हो सकता है। यदि हम इस बात को भलीभांति समझ लें कि मुझे ऐसा कार्य दूसरे के साथ नहीं करना चाहिए जो स्वयं मेरे साथ दूसरों के द्वारा किया जाय और वह मुझे बुरा लगे। बस जब मनुष्य यह समझ लेगा तो सुख उसके आगे-पीछे दौड़ेगा।

- श्री अंगिरा शोध संस्थान, ४१९/३, शान्ति नगर, पटियाला चौक, जीन्द-१२६१०२ (हरियाणा)
मो० ९४१६३८७४३२

www.thearyasamaj.org

भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता

– डॉ० उमा रानी

संस्कृति किसी जाति व राष्ट्र की वह धरोहर है जो शताब्दियों और सहस्राब्दियों से उन समस्त संस्कारों का ज्ञान करवाती है जिससे कोई जाति अथवा राष्ट्र अपने सामूहिक या सामाजिक जीवन के आदर्शों का निर्माण करता है। विश्व में अनेक संस्कृतियाँ पुष्पित और पल्लवित हुईं परन्तु समयानुसार सभी धराशायी हो गईं। मानवीय मूल्यों और उदार मानवीय भावों से सम्भृत भारतीय संस्कृति ही ऐसे सनातन नियमों की संस्कृति है जो आक्रान्ताओं द्वारा तहस-नहस कर दिए जाने पर भी अक्षुण्ण बनी हुई है। यह वेदमूलक संस्कृति है। वेदों में उपलब्ध राष्ट्रिय भावना किसी भूखण्ड पर लागू न होकर एक आदर्श राष्ट्र का प्रतिरूप है। राष्ट्रविषयक अवधारणा इडा, भारती और सरस्वती क्रमशः राष्ट्रभूमि, राष्ट्रिय संस्कृति और राष्ट्रभाषा के प्रतीक हैं।[1]

ऋग्वेद का संज्ञानसूक्त हमें संगठन की अपूर्व शिक्षा प्रदान करता है कि साथ-साथ चलो, प्रेमपूर्वक संवाद करो। तुम्हारे मन मिलजुलकर ज्ञान प्राप्त करें, जैसे पूर्व देवताओं ने एकत्रित होकर ज्ञान पाया और भजनीय प्रभु की उपासना की अर्थात् हे ईश्वर! आप हमें ऐसी बुद्धि प्रदान करें कि हम सब आपस में मिलकर साथ चलें, एक समान मीठा बोलें, समान हृदय वाले बनकर स्वराष्ट्र में उत्पन्न धन-धान्य और सम्पत्ति परस्पर बाँटकर भोगें।[2] हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति रागद्वेषरहित और प्रेमवर्धक हो। समाज और राष्ट्र के सुखपूर्वक रहने के लिए सबके विचार, मन, खाना और पीना समान होने की भी ऋग्वेद में कामना की गई है।[3]

यजुर्वेद में राष्ट्र-कल्याण का मांगलिक सन्देश राष्ट्रीय प्रार्थना अथवा राष्ट्रीय गीत के रूप में उपलब्ध होता है जो सामाजिक व पर्यावरण शुद्धिहेतु यज्ञों के अन्त में ऋषियों द्वारा पढ़ा जाता था, इसमें ऋषि परमात्मा से प्रार्थना करता है- हे भगवन्! हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण विद्वान् व ब्रह्मतेज सम्पन्न हों। क्षत्रिय शूर, धनुर्धारी, लक्ष्यप्रहरी और महारथी हों। गायें अत्यधिक दूध देने वालीं, बैल भारी बोझ उठाने वाले, आशुगामी व दुर्गमपथ विचरणकारी अश्व, सती, सुन्दरी और सगुणवती महिलाएँ रथारूढ़ हों, भारतवीरों की विजय अगवानी करने वाली हों। यज्ञ-निरत पुत्र, सभ्य, सुशिक्षित, सरल, सुविचारी, धन्य

१. अथर्ववेद, ५.२७.९ २. ऋग्वेद, १०.१९१.२ ३. वही, १०.१९१.४

www.thearyasamaj.org

राष्ट्र के भावी सुदृढ़ सहारा बनने वाले युवक हों। मेघ हमारी इच्छानुसार समय-समय पर जल बरसाएँ, हमारी औषधियाँ प्रचुर फलवती व स्वयं पकने वाली हों तथा हमारा योगक्षेम स्वत: सिद्ध हो जाए।[४] यजुर्वेदसंहिता में आये इस राष्ट्रगीत को पढ़ने पर तथा वैदिक ऋषियों की राष्ट्र के प्रति उदात्तभावों से भरी इस प्रार्थना से प्रमाणित होता है कि भारतीय संस्कृति राष्ट्रीय भावनाओं से कितनी ओत:प्रोत है।

वर्तमान समय में शान्तिपूर्ण सहास्तित्व की भावना के अंकुरण की आवश्यकता है। वैदिकी और लौकिकी राष्ट्रिय भावना में विभेदों के बीच ऐक्य स्थापित करने की अद्भुत मानवीय मेधा है जैसे कि अथर्ववेद में मातृभूमि के प्रति ऋषि द्वारा व्यक्त किए गए भाव राष्ट्रप्रेम की पराकाष्ठा हैं। भारतभूमि वह दिव्यवाणी है जो अपनी गोद में सभी प्राणियों का भरण-पोषण करती है। ऋषि गर्व से कहता है- **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।**[५] ऋषियों का यह उद्गार मातृभूमि की रक्षा के अन्तर्भाव में निहित है। यहां समस्त भारतीयों के हृदय में भारतभूमि के प्रति मातृभावना को उद्‌बुद्ध करके वैदिक ऋषियों ने राष्ट्रीयता की एक अद्भुत भावना भरी है। इस प्रकार यहां सभी वर्गों के लोगों को परस्पर बन्धुत्व के बन्धन में बंधकर, संगठित और मिलजुल कर अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में तत्पर रहने का सन्देश भी राष्ट्रीय एकता को दर्शाता है।

पौराणिक साहित्य में भारतदेश को स्वर्ग और मोक्ष से भी बढ़कर कहा है तथा देवता भी यहां जन्म लेने के इच्छुक हैं।[६] राष्ट्रवाद की उदात्तभावना का उदाहरण देते हुए पञ्चतन्त्र और हितोपदेश में सम्पूर्ण पृथ्वी को ही परिवार कहा गया है।[७]

आधुनिक युग में धर्मानुयायियों में धर्म के आधार पर वैमनस्य होने पर भी भारतीय संस्कृति के नियम-निर्धारकों का कहना है कि जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक है वह धर्म नहीं, कुधर्म है क्योंकि धर्म विरोध-निवारक तथा सत्य पर अवलम्बित होता है इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में भारतीय धर्म सहास्तित्ववादी व राष्ट्र के लोगों में एकता स्थापित करने वाला है।

भारत भू-भाग के लोगों के परस्पर मिलने-जुलने हेतु मनीषियों द्वारा चारधामों (बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी, सेतुबन्ध रामेश्वरम् और द्वारिका) की स्थापना की गई है। यहां लाखों श्रद्धालु प्रतिवर्ष धार्मिक दृष्टि से यात्राएं करते हैं। आदि शंकराचार्य द्वारा लोगों की धर्म, दर्शन तथा व्यवहार सम्बन्धी मानवीय जिज्ञासाओं के समाधान हेतु स्थापित किए गए चार मठ (ज्योति, गोवर्धन, श्रृंगेरी और शारदा) भी राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं। चार कुम्भस्थल जहां १२-१२ वर्षों बाद कुम्भ मेलों का आयोजन होता है। इस प्रकार उपर्युक्त

४. यजुर्वेदसंहिता, २२.२२
५. अथर्ववेद, १२.१.१२
६. ब्रह्मपुराण
७. पञ्चतन्त्र (अपरीक्षितकारकम्), पृ० ८५, श्लोक, ३८।

www.thearyasamaj.org

पवित्र स्थलों पर राष्ट्रिय एकता स्वतः झलकती है। भारतीय संस्कृति में सात मोक्षदायी नगरों (अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काञ्ची उज्जैन व द्वारिका) को पवित्र कहा गया है क्योंकि इन स्थानों पर जाकर हमारी मान्यताएँ समान होने कारण लोग स्वयं अनुभव करते हैं कि हम सब भारतवासी एक हैं। देश के विभिन्न भागों में विद्यमान बारह ज्योतिर्लिङ्गों के दर्शन धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पुण्यप्रद माने जाते हैं। कश्मीर प्रान्त में स्थित अमरनाथ गुफा को पवित्र धाम माना जाता है यहां आकर देश के विभिन्न प्रान्तों के लोगों के अन्दर राष्ट्रीयभाव जागृत होता है और सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ ऐक्य की प्रतीति होती है। गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त एक समान हमारे संस्कार भी हमें एकता का सन्देश देते हैं। हमारी समस्त मान्यताएं और देवपूजा सम्बन्धित कार्य संस्कृतभाषा में सम्पन्न होने के कारण यह भाषा राष्ट्रिय एकता की प्रतीक है। भारतीय संस्कृति की एक अनुपम विशेषता यह है कि इसमें पले-बढ़े शान्तिप्रिय लोग दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करने के पक्षधर नहीं होते। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम द्वारा रावण का वध करके विजय प्राप्त करने के पश्चात् लक्ष्मण ने पूछा कि क्या यहां राज्य स्थापित करना चाहिए। तब राम ने उत्तर दिया-

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।[८]

मातृभूमि से प्रेम का इससे बढ़कर निदर्शन और कहां मिल सकता है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं की सामान्य विशेषताओं का प्रतिपादन करते हुए लिखा कि रघुवंशी राजा विजययात्राएं दूसरे राजाओं के शोषणार्थ नहीं, अपितु यश-प्राप्ति के उद्देश्य से करते थे।[९]

भारतीय संस्कृति ऐसी महान् संस्कृति है, जिसमें विश्व-कल्याण की भावना भरी पड़ी है। वैदिक ऋषि प्रार्थना करता हुआ यजुर्वेद में कहता है कि मैं संसार के समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ।[१०]

भारतीय संस्कृति के समस्त धार्मिक कार्यों के अन्त में पढ़े जाने वाले मांगलिक पद्य में किसी जाति, धर्म व देश के लोगों की ही नहीं अपितु अखिल विश्व के कल्याण की भावना निहित है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता से सम्भृत भारतीय संस्कृति का अनादिकाल से यह उद्घोष रहा है कि-

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।११

-संस्कृत-विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊना (हि०प्र०)

८. आनन्द रामायण
९. रघुवंश, १.७
१०. यजुर्वेद, ३६.१८
११. वही, ९.२३

www.thearyasamaj.org

शब्द भी जीवन निर्माण में सहायक

– डॉ० ज्योति वर्मा

निश्चित अर्थ की प्रतीति शब्द से होती है। शब्द ही वह शक्ति है जिसके समूह से सार्थकता तथा मन के भाव प्रकट होते हैं। यह भाषा की स्वतंत्र इकाई है, सार्थक है। इसी के माध्यम से हम एक-दूसरे से तालमेल स्थापित करने में सक्षम होते हैं। यथार्थवक्ता को ही आप्त वक्ता कहते हैं अर्थात् जो साक्षात् बोलता है सार्थक बोलता है वही उसका बोला गया वाक्य 'आप्त वाक्य' कहलाता है। यही पदों का समूह होता है। यही आप्त वाक्य अर्थ की शक्ति से चमत्कृत हो शब्द शक्तिरूप ग्रहण कर वाणी में सार्थकता सिद्ध करता है। इसी के माध्यम से हम दूसरे के भाव समझने का प्रयत्न करते हैं। यही शब्दबोध है जो वक्ता और श्रोता दोनों का आपस में तारतम्य स्थापित करवाता है। अत: शब्द क्योंकि भावप्रधान होता है तो नि:सन्देह यह शक्ति आत्मा को प्रभावित कर वैचारिक या भावप्रधान शक्ति बन जाती है। यह कहना भी अनुचित न होगा कि 'वैदिक वाक्य' को सर्वरूप प्रमाण माना जाता है, साक्षात् ईश्वर की वाणी माना जाता है। वेदों में स्वयं ईश्वर ने आप्तवाक्यों की रचना की है। इसी प्रकार मनुष्योक्त वाक्य (लौकिक) वही प्रमाण है जो केवल मनुष्यमात्र के मुख से ही नि:सृत होते हैं। मनुष्य अल्पज्ञ है उसमें दोष हो सकते हैं उसके शब्द प्रमाण नहीं बन पाते केवल वैचारिक शक्ति तक ही सीमित रह जाते हैं। मानव केवल वैसी ही वाणी बोलता है जैसी उसकी प्रवृत्ति होती है, जैसी उसकी भावनाएं होती हैं और समय-समय पर बदलती भी रहती हैं और जैसी भावना होती है उसी के अनुरूप वह लौकिक क्रियाएं भी करता दिखाई देता है। इसी के कारण ही भाषा तथा मानव क्रियाओं का क्षेत्र निरन्तर और समय-समय पर बदलता भी रहता है।

शब्द-शक्ति तथा वैचारिकता में सामंजस्य-

नि:सन्देह भाषा मन के भाव हैं, जो शब्द-शक्ति के माध्यम से उभरते हैं तो यह स्वत: स्पष्ट है कि शब्दों के धरातल पर ही विचार बनते हैं। किसी व्यक्ति के आचार, व्यवहार, भाव को उसके द्वारा नि:सृत शब्दों से ही आँका जा सकता है। इसमें लेश मात्र सन्देह नहीं कि शब्दों से ही विचार बनते हैं। जैसे स्वामी दयानन्द सरस्वती, जवाहर लाल नेहरु आदि ने अपने विचारों से सर्व-साधारण को प्रभावित किया है। उनके विचारों से हम जान

www.thearyasamaj.org

पाए कि उनकी वैचारिकता क्या है? जैसा अनुभव होगा वैसे ही भाव बनेंगे वैसे ही विचार होंगे तथा वैसे ही शब्द निःसृत होंगे।

बुद्धि > अनुभूति > भाव > विचार > शब्द > भाषा यह चक्र चलता ही रहेगा।

हर्ष, विषाद, क्लेश, निराशा, विस्मय, खेद, पश्चाताप, विश्वास, आशा, उत्सुकता, चिन्ता तथा उदासी ये मन के कुछ ऐसे भाव हैं जिन्हें बुद्धि ग्रहण करती है फिर अनुभूति कर परिस्थिति के अनुसार भाव बनकर शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति के विचार बन जाते हैं।

जब भाव बनते हैं तो विचार बन कर मानव की भावना तथा अनुमान को परिलक्षित करते हैं-

बुद्धि > अनुमान/ कल्पना > भाव > विचार > शब्द > मनोवृत्ति

मनुष्य का आकार प्रकार तथा स्वभाव आदि मानवजाति का सामान्य धर्म है, जो मनुष्यमात्र में स्थित है। ईश्वर द्वारा केवल मानव को बुद्धि, विवेक दिया गया है जिसमें वह सोचने समझने की क्षमता रखता है यह क्षमता ही उसे किसी भाव की अनुभूति करवाती है। अनुभूति से वह अपनी बुद्धि अनुसार अनुमान करने लगता है। अनुमान के आधार पर उसके भाव प्रकट होते हैं वे भाव उसके मुँह से शब्द बनकर निकलते हैं उसकी वैचारिकता को दर्शाते हैं तथा ये विचार ही उसके संपूर्ण जीवन को प्रभावित करते हैं।

वैचारिकता तथा जीवनमूल्य-

मानव की बुद्धि क्षण-क्षण परिवर्तित वातावरण को निरखती रहती है। मनुष्य के जीवन में जो भी परिवर्तन होते हैं वे उस की मानसिकता पर ही निर्भर करते हैं, विचार शक्ति पर निर्भर करते हैं, जो उसके जीवन को प्रभावित करते हैं।

निःसन्देह मनुष्य का जीवन, उसका अस्तित्व उसकी विचारशक्ति पर निर्भर करता है। वह अपनी अनुभूतियों, अनुभवों, मानसिकताओं तथा स्वतन्त्र चयन के माध्यम से स्वयं को पुनःसर्जित करता है, अपना जीवन यापन करता है। मनुष्य का जीवन क्षण-क्षण बदलता है यों कहें कि क्षण-प्रतिक्षण में ही वह जीता है जिस प्रकार बूँद-बूँद से सागर का जन्म हो जाता है वैसे ही विचारों से मनुष्य का जीवन बनता है। प्रत्येक क्षण मनुष्य के विचार बदल जाते हैं वहीं बदले हुए क्षण उसकी विचारधारा बदल देते हैं। मनुष्य की जैसी प्रवृत्ति होती है वैसी ही विचारधारा बनती है जो उसके जीवन को प्रभावित करती है क्योंकि वैचारिकता से अभिभूत होकर वह कर्म करता है कर्म जीवन का आधार होते हैं। कर्मों से मिलने वाला फल निश्चित होता है।

बुद्धि > कल्पना/ अनुमान > भाव > विचार > शब्द > मनोवृत्ति > कर्म > कर्माधार > जीवन > बुद्धि यह चक्र चलता ही रहता है-

यः मनसा वचसा कर्मणा कुशलः सः स्थितप्रज्ञः अस्ति।

अतः गीता की वाणी भी यही कहती है

www.thearyasamaj.org

कि मनुष्य मन > वाणी > कर्मों से ही अपने जीवन का निर्माण करता है। सत्य है शब्दों से व्यक्ति के विचार सीखता है तथा विचारों से जीवन निर्मित होता है इसमें कोई संशय नहीं।

उपसंहार-

नि:संदेह इस बात में कोई संशय नहीं कि शब्दों से व्यक्ति की मानसिकता परिलक्षित होती है और मानसिकता एवं वैचारिकता ही व्यक्ति का जीवन निर्माण करती है इससे मनुष्य पल-पल शिक्षित होता रहता है। जिसकी जैसी भावनाएँ होती हैं उसे प्रभु भी वैसे ही दिखाई देते हैं अर्थात् मन के भावों की प्रधानता आँखों तथा हृदय के माध्यम से बनती है। आँखों से देखा गया एक दृश्य हृदय में समाता है तथा बुद्धि विचार के माध्यम से उसे संशोधित कर पूर्ण जीवन को ही परिवर्तित कर देती है। मनुष्य विचारों से सीखता है विचारों से ही वह जीवन को जीना सीखता है-

शब्द > नेत्र > कर्ण > दृश्य > ग्राह्यता > हृदय तंत्र > बुद्धि > विचार > जीवन परिवर्तन

अत: शब्द > जीवन परिवर्तन, यहां स्वत: स्पष्ट है कि किस प्रकार शब्द व विचार जीवन परिवर्तित करता है। शब्द, जिसे कर्ण से सुना तथा आँखों से देखा गया तब वही शब्द या दृश्य हृदय में पहुँचा फिर मनन करने बाद बुद्धि से संशोधित किया हुआ विचार बनकर जीवन को परिवर्तित कर देता है। वहीं एक छोटा-सा शब्द जीवन को चमत्कृत कर देता है।

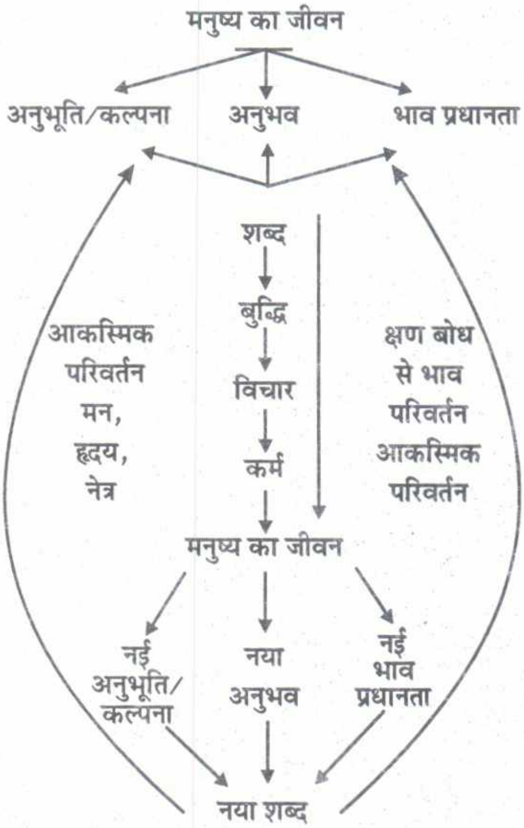

उपरोक्त चित्र स्वत: निर्धारित करता है कि मनुष्य का जीवन विचारों पर, विचार शब्दों पर निर्धारित होते हैं जो जीवन परिवर्तन लाते हैं। अत: शब्दों से ही प्रभावित होकर हमारे विचार बनते हैं तथा जीवन विचारों पर ही आधारित होता है। अत: शब्द ही जीवन निर्माण में सहायक होते हैं। शब्द चुनाव सही करें। इसीलिए कबीरदास कहते हैं कि-

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए,
औरन को सीतल करे, आपहुँ सीतल होए।

- खन्ना कॉटेज, गली न. 15, न्यू कृष्णा नगर, माल रोड, होशियारपुर। मो. 9501020568, 9814930153

www.thearyasamaj.org

बालक इसिदोमारू: जापान की एक प्राचीन करुण दंत-कथा

–श्री महेन्द्र साइजी माकिनो

हेमंत ऋतु का महीना था। आकाश एकदम साफ और सुन्दर, गुलदाउदी फूल देखने योग्य थे। ऐसे मधुर वातावरण में एक वन-भोज का आयोजन हो रहा था।

अपने वन-भोजन में आनन्द लेते हुए 'हारादा'

इस भोज का मालिक था हारादा और उनके अतिथि थे, कातो और उस का बेटा सिगेउजि। सब लोग बगीचे में खिले हुए विभिन्न फूलों को देखते हुए आनन्दपूर्वक भोजन का रस ले रहे थे। उसी समय यकायक कहीं शोरगुल होने लगा। देखा, तो एक पागल घोड़ा इस भोजसभा की ओर तेजी से दौड़ा आ रहा था। अब सभा तितर-बितर होने ही वाली थी कि अचानक एक बालक खड़ा हुआ और घोड़े की ओर कूद पड़ा। वह देखते-देखते घोड़े पर सवार हुआ और किसी प्रकार उस ने घोड़े को शान्त कर दिया। केवल १७ वर्ष मात्र, छोटी उम्र के इस बालक की कुशलता और हिम्मत देखकर कोई भी प्रशंसा किये बिना न रह सका। बालक का नाम था सिगेउजि। इन चमत्कारिक दृश्यों को छिपे-छिपे एकटक देख रही थी, मालिक हरादा की बेटी केइको।

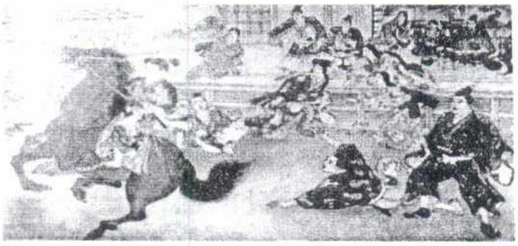

एक बालक (सिगेउजि) एक पागल घोड़े को अपने काबू में रखते हुए

इस घटना के बाद सिगेउजि और केइको दोनों विवाह के बन्धन में बंध गये। उन का सुखी विवाहित जीवन शान्तिपूर्वक बीत रहा था। किन्तु एक सुन्दर और होशियार लड़की के आगमन से उन का जीवन उलट-पुलट गया जिसने सिगेउजि के मन को केइको से हटाकर एकदम मोहित कर डाला था।

इस सुन्दर लड़की का नाम था, सेनरि। एक दिन सिगेउजि फूल देखने के लिए एक जंगल में गया। जंगल में घूमते ही वर्षा से भीग गया और एक घर में शरण ली जिस की

www.thearyasamaj.org

मालिक ही सेनरि थी। उस के जन्म के बारे में पूछने पर पता चला कि वह सिगेउजि के पिता के मित्र की अनाथ बच्ची थी। उसके बाद सिगेउजि सेनरि के साथ ही ज्यादा समय व्यतीत करने लगा और सेनरि भी अपने इस एकाकी जीवन में मिलने वाले प्रेम और दयाभाव को स्वीकार करने लगी। कभी जब फूलों के नीचे वन-भोज का आयोजन होता था, तब हमेशा यहीं सुन्दरी सेनरि का दर्शन भी होता था। वीणा की मधुर आवाज के साथ-साथ सुगन्ध बिखेरता हुआ चेरी का फूल......... कौन जानता था कि वही दृश्य उस के भाग्य को इंगित करता था! चेरी फूल में कितनी भी शाखाएं बांटी जायँ, फिर भी सुन्दर फूल उसमें आ ही जाता है। किन्तु मनुष्य के मन को दो हिस्सों में बांट कर उसी में सुन्दर फूलों की अपेक्षा करना व्यर्थ है। उसी प्रकार एक ओर सेनरि सिगेउजि के प्रेम को खूब स्वीकारती थी, तो दूसरी ओर पत्नी केइको प्रेम और घृणा की ज्वाला में अपने को जला कर दुःखित थी।

अनजाने में ही दोनों स्त्रियों के बीच भयंकर ईर्ष्या और घृणा की ज्वाला उठने लगी। अचानक कभी कहीं दोनों मिलतीं, तो जान-बूझ कर अपने मित्र-भाव को दिखाने के लिए शतरंज खेलती थीं। एक दिन सिगेउजि ने अनजाने में अचानक दोनों के खेल को झांक कर देखा, तो उस की आन्तरिक नजर में दोनों के दिलों में भीषण मानसिक संघर्ष दिखाई दिया।

सिगेउजि को लगा कि यह सब किस के लिए ? और तो कुछ नहीं, केवल अपने दुर्भाव के कारण ! उसी रात को सिगेउजि अपना मकान और अपना परिवार सब कुछ छोड़कर गायब हो गया। आधी रात के सन्नाटे में उसके प्रस्थान को और भी प्रेरित कर रही थी, लहरों की आवाज।

सिगेउजि के घर से भाग जाने के बाद घर में एकदम खामोशी छा गई थी और एक धुंधली मोमबत्ती के नीचे मेज पर एक हाथ-पंखा रखा था जिसमें सिगेउजि ने इस सांसारिक जीवन की नश्वरता पर शोक प्रकट करते हुए एक कविता लिखी थी। उस की पत्नी केइको के दुःख की सीमा न रही। एक ओर इस दुःखद प्रसंग पर सारे परिवार-सदस्यों की यथासंभव तलाशी के बावजूद सभी कोशिशें व्यर्थ गईं। दूसरी ओर सिगेउजि अपने परिवार के शोक, चिन्ता और उदासी पर कुछ भी ध्यान न देकर लहरों के समान अपने बेचैन हृदय को संभालते हुए अपने गन्तव्य पूर्व की ओर यात्रा कर रहा था। आखिर वह जिला 'वाकायामा' के 'कोया' नामक ऊँचे और

www.thearyasamaj.org

पवित्र पहाड़ तक आ पहुँचा, जहाँ वह एक महाभिक्षु का अनुयायी होकर अपने काले बालों को काट कर भिक्षु बन गया। लोगों का यह समझना गलत होगा कि कल तक में उसके समृद्ध जीवन की तुलना में आज की अवस्था कितनी दयनीय है। उस ने एकाग्रतापूर्वक बौद्धधर्म को स्वीकार किया और 'एनकूबो' नामक भिक्षु बनकर धार्मिक साधना में जुट गया।

इधर केइको यह सोचने लगी कि सेनरि के न होने से ऐसी अवस्था कभी नहीं होगी, सेनरि को जीवित नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार उस की ईर्ष्या और घृणा दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। तरह-तरह का प्रयोजन बनाकर आखिर में सेनरि की जान लेने तक की नौबत आ गयी। किन्तु केइको की एक दयालु दासी ने सेनरि को हत्या से बचा लिया और सेनरि बिना किसी आयोजन के उसी दासी के बड़े भाई के पास आश्रय लेने के लिए जल्दी-जल्दी 'क्यूश्यू' की ओर यात्रा करने निकल गई।

दो कमजोर स्त्रियों की यात्रा कितनी खतरनाक होती है। कई बार कष्ट तथा संकट में फंसती हुई किसी तरह गन्तव्य तक वह पहुंच गई, जहां दासी का कामुक बड़ा भाई उस की राह ताक रहा था। वहां उस कामुकता से बचकर उसे असहाय जीवन व्यतीत करना पड़ा। अकेलेपन और व्याकुलता के बीच सेनरि ने एक दिन एक सुन्दर लड़के को जन्म दिया जिस पर कोई भी आशीर्वाद देने नहीं आया। किन्तु मां की प्रेम-शक्ति इतनी प्रबल थी कि उसने दत्तचित्त होकर उसका अच्छी तरह पालन-पोषण किया। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया, वैसे-वैसे उसका स्वरूप उसके पिता 'सिगेउज़ि' के समान हो गया। उसका नाम रखा गया, 'इसिदोमारू' जो उस के पिता के ही बचपन का नाम था।

किन्तु पिता सिगेउजि कहां है? यदि जानना चाहे, हजार मील दूर पहाड़-नदी को पार करना पड़े, तो भी मां का दिल चाहता था कि उससे मिलकर यह कह सके कि यही तुम्हारा बच्चा है और बच्चे का मुख यों पुकारना चाहता था कि आप मेरे पिता जी हैं।

उसी समय उड़ती खबर यह आ रही थी कि उस के पिता जी 'कोया'-पहाड़ में भिक्षु बन कर रह रहे हैं। यह खबर सुनकर इसिदोमारू का दिल आनन्द से भर गया। मां और बेटा साहसपूर्वक कई कष्ट सहते हुए 'कोया'-पहाड़ के नीचे पहुँचे और वहां एक सराय में शरण ली।

पिता (सिगेउजि) की खोज में 'कोया'-पहाड़ [illegible]
चढ़ते हुए मां और उसका बेटा (इसिदोमारू)

www.thearyasamaj.org

सराय के मालिक से वहां के बारे में पूछा, तो कहा गया कि उस पवित्र 'कोया'-पर्वत पर स्त्री का जाना मना है। क्योंकि स्त्री बौद्धमार्ग में एक बाधा है, इसलिए वहां यह कड़ा नियम रखा गया है कि कोई भी स्त्री उस से आगे नहीं जा सकेगी। सेनरि को यह सुनकर बुरा लगा, दु:ख हुआ और वह अवाक् रह गई। क्या यह नियम केवल मेरे लिए ही बनाया गया है? फिर भी वह क्या कर सकती थी?

सराय के मालिक के यह बताने से बालक की मां दु:खित हो जाती है कि नारी इस के आगे नहीं जा सकती....

निरुपाय! मां दु:खी मन से अपने बेटे को खूब समझाती है कि तुम्हारे पिता का स्वरूप कैसा है? मां की बात अच्छी तरह ग्रहण करके बालक इसिदोमारू अकेला पहाड़ की चोटी की ओर अपने पिता की तलाश में निकला। तन-मन से खूब थक कर किसी घने जंगल में, कभी पेड़ के नीचे, कभी मन्दिर की ओरी में झपक ले लेता था। दूसरी ओर मां अपनी सराय में अपने बेटे की सुरक्षा की चिन्ता करती हुई प्रतीक्षा करती थी। कौन कह सकता था कि वास्तव में पिता है या नहीं? इस प्रकार आज भी, कल भी दिन बीतता जा रहा था।

जब इसिदोमारू तलाश करते-करते एक पुल के पास आ पहुँचा, तब उसे यकायक आश्चर्य हुआ कि सामने देवदारू की कतार के मार्ग से एक भिक्षु धीमी गति से चले आ रहे थे। उन्हें ध्यान से देखा तो मां के बताए हुए अपने पिता के समान ही दिखाई दिये।

अपने सच्चे पिता से अचानक मिल जाता है...
परन्तु पिता अपना नाम छिपा कर सच नहीं बोलता..

बालक ने सोचा कि यही मेरे पिता जी हैं। प्रफुल्लता दबाते हुए, वह बोला, 'माफ कीजिए, भिक्षु जी, आप'..... विस्फारित आंख से देखते हुए उस ने पूछा, 'आप का नाम 'सिगेउजि' नहीं है क्या? पहले तो भिक्षु का चेहरा शान्त था, पर यह बात सुनकर उनके तन-मन में कुछ घबराहट दिखाई दी। फिर भी अपने को संभालते हुए वे बोले 'तुम्हारे द्वारा पूछा गया व्यक्ति कुछ समय पहले मेरे साथ था, किन्तु अभी इस संसार से चला गया है। देखो, उसी कब्र के नीचे सो रहा है।

'तुम्हारा पिता तो मर गया है ......'
कहते हुए अपने आंसू को रोक न सके...

www.thearyasamaj.org

यह दुनिया परिवर्तनशील है, कितनी तेजी से घूमती है। अभी तुम्हारे लिए यह अच्छा होगा कि तुम अपने पिता की आत्मा की शान्ति के लिए पूजा किया करो। उस की एकमात्र आशा की किरण भी एक क्षण में समाप्त हो गई। इसिदोमारू पास की कब्र पर गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। भिक्षु की आँखों में भी आँसू थे।

थोड़ी देर में भिक्षु इसिदोमारू को प्रोत्साहन देकर कहने लगे 'तुम्हारी मां पहाड़ के नीचे तुम्हारा इन्तजार कर रही होगी। तुम जल्दी जाओ और मां की आशा बंधाओ। यह विशेष ध्यान रखो कि वह निराश होकर कहीं अस्वस्थ न हो जाय। जाओ, अब यहीं विदाई।'

यह कहकर भिक्षु धीरे-धीरे वहां से चला गया और इसिदोमारू भिक्षु की दया को हृदय में समेटकर पहाड़ से नीचे की ओर उतरने लगा।

जब बालक 'इसिदोमारू' सराय पर पहुँचा तो मां का स्वर्गवास हो गया था..... अनाथ।

इधर सेनरि स्त्री 'कोया'-पहाड़ पर न चढ़ सकने की बात सुनकर अस्वस्थ हो गई थी, उधर इसिदोमारू उदास मन में यह सोचते हुए चल रहा था कि पिता की मृत्यु की खबर सुनकर मां की क्या दशा होगी? भारी मन से पैर घसीटकर वह चलता रहा। किन्तु जब उसने मां के ठहरने की सराय का दरवाजा खटखटाया, तब तक मां का स्वर्गवास हो चुका था।

अभागा, मां की मृत्यु से दु:खित बालक अपने अतीत के जीवन पर विचार कर रहा था। इतना दु:ख, इतनी विपत्ति, इतना अभाग्य उस मां और बेटे के समान इस दुनिया में और किस के साथ हो सकता है? अब उसे ऐसे दु:खद संसार को छोड़ना ही चाहिए।

भिक्षु (अपने सच्चे पिता) के पास आकर उन का शिष्यत्व ग्रहण करते हुए बालक 'इयिदोमारू'

दूसरे दिन बालक इसिदोमारू ने उसी भिक्षु के पास जाकर उसका शिष्यत ग्रहण किया। किन्तु वह यह नहीं जानता था कि पिता क खून बेटे के खून को खींच रहा है। वास्तव में यह भिक्षु कोई और नहीं, वह तो उसका पिता 'सिगेउजि' ही था। भिक्षु ने एक बार इस संसार को त्यागने का संकल्प लिया, परन्तु वह यह व्यक्त नहीं कर सकता था कि मैं ही तुम्हारा पिता हूँ। पिता और पुत्र दोनों इस नश्वर संसार से विरक्त गुरु और शिष्य रूप में बदल गये और ४० वर्ष तक इस 'कोया'-पर्वत के घने जंगल में केवल एक ही मार्ग बौद्ध-साधना में जुट गये।

- जापानी स्टॅडी विभाग, विश्वभारती, शान्ति निकेतन, वैस्ट बंगाल (*India*)

www.thearyasamaj.org

कबीर काव्य में सामाजिक अवधारणा एक विश्लेषण

– डॉ० आदित्य आंगिरस

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल (संवत १३७५ से लेकर संवत् १७०० तक) भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। इस काल के भक्त-कवियों ने जहां उस परम-तत्त्व को सृष्टिकर्ता के रूप में जानने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने भक्ति के माध्यम से सामाजिक समानता एवं समरसता को भी प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, जो प्रचलित लिङ्गभेद, धर्मभेद, जातिगतभेद से भिन्न थी। निर्गुण सन्त एवं सूफ़ी कवियों ने सभी को उस मानवीय धरातल पर लाने का प्रयत्न किया जिसकी भाव-भूमि सभी के लिये समान थी, जिस में जातिगत, धर्मगत और लिङ्गगत बन्धन नहीं थे। सन्तकाव्य की यह विशेषता है कि वह ऐसे सामाज की कल्पना करता है जो धर्मगत, जातिगत रूढियों एवं बंधनों से मुक्त है और जो मानव को मानव मानने के लिये बाध्य है। कबीर का नाम सन्त-परम्परा के चिन्तकों एवं कवियों में अग्रगण्य माना जाता है क्योंकि कबीर ने न केवल सामाजिक सत्य को भावात्मक रूप में देखा, समझा और स्वीकार किया अपितु उसमें आवश्यक बदलाव करने का प्रयास भी किया। यद्यपि कबीर के भाव- नैर्मल्य की बानगी देखते ही बनती है फिर भी कई चिन्तक कबीर-काव्य की संप्रेषणीयता पर प्रश्न खड़ा करते हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना अधिक सार्थक होगा कि कबीर, सर्वप्रथम, मानव को मानव के रूप में देखने में अधिक विश्वास करते हैं जिसमें आवश्यक मानवीय गुण विद्यमान हैं। कबीर की यह अवधारणा भारतीय समाज में प्रचलित व्यक्तिगत, जाति अथवा पंथगत मानवीय परिकल्पना से नितान्त भिन्न है।

कबीर किसी धर्म-विशेष को इंगित न करके समाज में प्रचलित सभी धर्मों एवं आस्थाओं के विषय में बात करता है। कबीर के लिये सभी प्रचलित धर्म-साधनाएं बराबर हैं परन्तु जिस असल तत्व की वे समाज में अपेक्षा करते हैं वह केवल और केवल मनुष्यता है। तभी तो वे जहां एक ओर, प्रचलित ब्राह्मणवाद पर करारा कटाक्ष करते हैं और दूसरी ओर वैसा ही तीखा व्यंग्य मौलवी-परम्परा पर भी करते हैं। वास्तव में कबीर का मन्तव्य धर्म की उन जड़ परम्पराओं पर प्रहार करना रहा है जो मनुष्य को मनुष्य के साथ न जोड़ कर उसे एक-दूसरे से अलग करती हैं। कबीर इन्हीं संदर्भों में अपनी वाणी को 'ढाई आखर प्रेम का पढे सो पण्डित होई' कह कर

www.thearyasamaj.org

अभिव्यक्ति देते हैं। कबीर का यह संदेश मनुष्य को मनुष्य से अलग करने में विश्वास नहीं करता। कबीर का यह संदेश ऐसे प्रेम की बात करता है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़े। कबीर सभी जीवों में उस चेतना को देखते हैं जो सृष्टि का रचनाकार एवं पालनकर्ता है। कबीर के प्रेम में ऐन्द्रिय-वासना का कोई स्थान नहीं है और यहां प्रेम का अर्थ प्रेमी के प्रति सम्पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण है। कबीर ने संभवतः समाज को यही स्थिति अवगत करवाने के लिये 'लाली मेरे लाल की....' कह कर अपनी वाणी को अभिव्यक्ति दी। अतः कबीर जिस प्रेम के रूप की बात करते हैं वह बुद्धि का विषय नहीं वह हृदय का विषय है एवं वह सीमित दृष्टिकोण वाला नहीं है। उसका आधार मनुष्य की वे श्रेष्ठतम भावनाएं हैं जो सात्विक चित्त की पृष्ठभूमि पर अभीप्सित हैं। इसी लिये वे सभी व्यक्तियों को मन को वश में करने को कहते हैं। संभवतः कबीर उस औपनिषदिक रहस्य को जानते थे जो मन की सभी इच्छाओं का आधार एवं मनुष्य को कर्म करने में प्रवृत्त करता है। मनुष्य श्रेष्ठतम आचरण की कल्पना केवल मन के सात्विक होने पर ही कर सकता है।

कबीर की वाणी में यदि आत्म-समर्पण को देखा जाये तो कबीर अपनी तुलना उस निराकार राम के उस जन्तु-विशेष से करते हैं जो संपूर्ण रूप से भगवदाश्रित है अर्थात् -

'मैं तो कूत्ता राम का। मुतिया मेरा नाऊ।
गले पडी जेवडी राम की। जित खीचे तित जाऊ।

कबीर यद्यपि पारिवारिक बन्धनों से बन्धे हुए थे परन्तु कहीं भी वे अपनी इच्छा को प्रधानता नहीं देते। वे सरल जीवन जीते हुए ईश्वरेच्छा को प्रमुखता देते हैं। वे स्वतन्त्र-चिन्तन में विश्वास करते हैं। वे गीता में उपदेशित कर्म-सिद्धान्त के अनुसार कर्म करते हुए जीवन यापन करने में विश्वास करते हैं।

कबीर के विचार से यह जीवन, सं[illegible] उसके संपूर्ण सुख क्षणिक हैं। इनके पी[illegible] व्यर्थ में समय को गुजारना है। कबी[illegible] यह संसार दुखों का मूल है। सुख का [illegible] मूल केवल आनंदस्वरूप राम है। इसकी कृपा के बिना, जन्म-मरण तथा तज्जन्य सांसारिक दुखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। यही कारण है कि कबीर साहब राम की भक्ति पर अत्यधिक बल देते हैं और कहते हैं कि सब कुछ त्याग कर राम का भजन करना चाहिए। वस्तुतः कबीर अन्तर्मुखता के पथ पर अग्रसर हो कर भक्ति की बात करते हैं। कबीर जो अन्तर्मुखी होकर बात करते हैं वह निश्चित ही मनुष्य की बहिर्मुखी वृत्ति होने के कारण बुद्धिगम्य नहीं होती। मनुष्य की वृत्ति जब तक बहिर्मुखी होगी और वह वस्तुओं की ओर आकर्षित रहेगा तो निश्चित रूप से बात समझ में नहीं आ सकती। कबीर की वाणी को समझने के लिये मनुष्य को अन्तर्मुखी होना आवश्यक है।

www.thearyasamaj.org

कबीर के काल में जब आम जनमानस में नाना धर्म-साधनाएं प्रचलित थीं जिनमें सिद्ध नाथ, शाक्त, वैष्णव धर्म-साधनाएं प्रमुख रहीं वहीं दूसरी ओर मुसलमानों के एकेश्वरवाद का प्रभाव भी बहुत गहरा रहा। ऐसे में कबीर ने अपनी एकनिष्ठ भक्ति के माध्यम से जनता को वह आधार दिया जो इन सभी प्रचलित धर्म-साधनाओं से अलग था और जिसका आधार केवल मनुष्यता था। अपनी भक्ति के माध्यम से जिस निर्गुण निराकार राम की उपासना करने की बात करते हैं वह वास्तविक रूप में सभी प्रचलित धर्म-साधनाओं का निचोड़ है। कबीर बिना लाग-लपेट के हर धर्म के उस पक्ष से प्रभावित हुए जो मनुष्यमात्र को जीवन के श्रेष्ठतम मार्ग की ओर अग्रसर करता है और धर्म के उस पक्ष पर उन्होंने प्रहार किया जो मनुष्यता के मार्ग में विघ्न उपस्थित करता है, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करने का प्रयास करता है। वास्तव में कबीर अन्ध-भक्ति पर विश्वास नहीं करते क्योंकि वे कठोपनिषद् के वाक्य 'अन्धं तमः प्रविशन्ति...' से परिचित थे। अतः वे आस्था को सामाजिक तर्क की कसौटी पर कसते हैं एवं उसको अपनाते हैं जो सामाजिक नियमों के अनुरूप है। वे राम की भावरूप में सत्ता को स्वीकार करने की पक्षपाती हैं एवं राम की यही सत्ता तभी बोधगम्य हो सकती है जब जीव माया को अपावृत कर अपने सत्य स्वरूप को जान सके। राम या परमात्मा की भक्ति से ही माया का प्रभाव नष्ट हो सकता है तथा बिना हरि की भक्ति के कभी दुखों से मुक्ति नहीं हो सकती है। कबीर इस तथ्य को अच्छी तरह जानते थे कि -

बिनु हरि भगति न मुक्ति होइ, इउ कहि रमें कबीर।

परंतु कबीर की दृष्टि के अनुसार भक्ति पूर्णतः निष्काम होनी चाहिए, वे हरि से धन, संतान कोई अन्य सांसारिक सुख माँगने के विरुद्ध हैं, वे तो भक्ति के द्वारा स्वर्ग भी नहीं माँगना चाहते हैं। कबीर ने अपनी भक्ति में जिस निर्गुण आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्मभावना अधिकांश अद्वैती है किन्तु कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसलिये कबीर किसी सिद्धान्त के अनुयायी नहीं न ही प्रस्थापक हैं। उनका ब्रह्म उनके अनुभवों की देन है। कबीर पहले साधक हैं फिर कवि। वे अपनी भक्तिसाधना में जिस-जिस रूप में अपने ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं उसी रूप में उसे वर्णित करते जाते हैं। यही कारण है कि कबीर का ब्रह्म कभी किसी रूप में कभी किसी रूप में हमारे सामने आता है। कबीर की भक्ति में निष्कामभाव है कि यदि उन्हें प्रभु प्राप्त हो भी जाएं तो उनसे वे किसी कामनासिद्धि की बात नहीं सोचते। उनकी एकमात्र कामना है-

नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय।।

यद्यपि कबीर की भक्तिभावना पर वैष्णव विचारधारा का आंशिक प्रभाव पड़ा, सिद्ध

www.thearyasamaj.org

और नाथपंथी योगियों का भी प्रभाव पड़ा, सूफीमत का भी काफी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है फिर भी कबीर पर औपनिषदिक एवं वैदिक-दर्शन का भी प्रभाव देखने को मिलता है। वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम-रोम और सृष्टि के कण-कण में बसा है। वह मन में होते हुए भी दूर दिखाई देता है, किन्तु जब प्रियतम पास ही हो तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता? इसलिये कबीर कहते हैं-

प्रियतम को पतिया लिखूं, कहीं जो होय बिदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा संदेस।

यह तो निश्चित है कि कबीर सत्गुरु के महत्त्व को न केवल स्वीकार करते हैं बल्कि वे सत्गुरु को गोविन्द से अधिक महत्व भी देते हैं। इसका कारण कि सत्गुरु ही इस जीवन में वह प्रकाशक तत्त्व है जिसने कबीर को हठयोग के माध्यम से शब्द-ब्रह्म तक पहुंचाने का श्रेष्ठतम कार्य किया है। कबीर अपने शब्दों में इसी तथ्य को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

शब्द गुरु का शब्द है, काया का गुरु काय।
भक्ति करै नित शब्द की सत्गुरु यौं समुझाय।।

उनके अनुसार शब्दब्रह्म की नित्यता समझाने का श्रेय केवल गुरु के उस भौतिक रूप को ही जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे शब्दब्रह्म में निष्णात हो सके हैं। कबीर का यह मानना है कि गुरु ही वास्तविक माता, पिता, देव है एवं उसी की सेवा करनी चाहिये क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर ही आत्मा सब प्रकार के शुभ को प्राप्त कर लेती है। अतः कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर ने गुरु को गोविन्द से जो अधिक महत्त्व दिया है उसके पीछे विद्या में सिद्धि ही एकमात्र कारण सत्गुरु हैं। कबीर संभवतः इस बात को भी जानते थे कि जिस मार्ग पर वे चल रहें हैं वह गुरुकृपा के माध्यम से ही प्राप्तव्य था अन्यथा नहीं। इसीलिये वे छद्म-गुरु एवं सत्गुरु के बीच भेद स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय।।

यह बात निश्चित है कबीर का काव्य अन्तर्मुखता का एक ऐसा काव्य है जिसे हृदयंगम करने के लिये मनुष्य को अन्तर्मुखी होना आवश्यक है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें बुद्धि की स्थिति नगण्य है। यदि मनुष्य अन्तर्मुखता की उस स्थिति को प्राप्त कर आत्म से जुड़ता है तो वह मनुष्य समाज में रहते हुए भी ऐसी स्थिति को प्राप्त कर सकता है जो कबीर के अपने शब्दों में-

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।।

ऐसी स्थिति में मनुष्य कर्म करते हुए कर्म-फल आसक्ति से दूर रह कर न केवल आत्मश्रेयस का पथ निर्मित करता है अपितु समाज में दूसरों के लिए एक उदाहरण रूप में अपने-आप को प्रस्तुत करता है।

-वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड आई. एस. (पंजाब विश्वविद्यालय) साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

कबीरवाणी और गोरखवाणी में समानता

– प्रो० राजेन्द्र कुमार

कबीरवाणी और गोरखवाणी में ऐसा अंत:सम्बन्ध पाया जाता जो सूक्ष्मदृष्टि से ही दिखाई पड़ता है। संतमत पर नाथमत का व्यापक प्रभाव है। ठीक इसी प्रकार कबीर-वाणी पर गोरखनाथ की वाणी का प्रभाव है। संतकाव्य में योग-प्रक्रिया की जो विशेषताएं दिखाई देती हैं उनका उत्स भी नाथयोगियों की साधना पद्धति में दिखाई पड़ता है। कबीरवाणी और गोरखवाणी में इतना साम्य है कि कबीर को समझने से पहले हमें नाथपंथी सिद्धातों का अध्ययन करना पड़ेगा। 'कबीर सिद्ध और नाथ-परम्पराओं से दाय से प्राप्त अद्वैतवाद, रहस्यात्मक साधना-पद्धति, धार्मिक दंभ व आडम्बर के प्रति विरक्ति एवं कोरी विद्वत्ता के प्रति विरोधभावना, जाति-पाति तथा ऊंच-नीच के खण्डन की प्रवृत्तियों को रामानंद से प्राप्त भक्ति एवं प्रेम-भाव से समन्वित करके सरल, सहज एवं मनोहारी बना देते हैं।'[१]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथमत को 'अवधूत मत' भी कहा है। अवधूत शब्द का अर्थ है- संन्यासी, विरक्त या पराभूत।[२] इस मत के अनुयायी गेरूआ वस्त्र, शरीर पर क्षार, ललाट पर त्रिपुण्ड, कानों में छिद्र करके कुण्डल धारण करते हैं जिस कारण इन्हें कनफटा जोगी कहा जाता है। यही अवधूत शब्द कबीर-चिंतन में मिलता है वे कहते हैं कि 'अवधूत' की वाणी ऐसी है जिसे कम लोग समझ पाते हैं-

ऐसी रे अवधू की वाणी,
ऊपरि कुवटा तेलि भर पाँणी।।[३]

'हठयोग' नाथपंथियों की साधना-पद्धति का आधार है। गोरखनाथ ने पतंजलि के सिद्धांतों को आधार मानकर हठयोग का प्रवर्तन किया। 'हठयोगियों के सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है 'सूर्य' तथा 'ठ' का अर्थ है 'चन्द्र'। इन दोनों के योग को ही हठयोग कहते हैं।[४] गोरखनाथ के हठयोग का प्रभाव कबीर पर पड़ा। कबीर

१. मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़, पृष्ठ संख्या-६७
२. डॉ० हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्द कोश, पृष्ठ संख्या-६१
३. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, पृ. ४३२
४. डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या-६३

www.thearyasamaj.org

को समझने के लिए 'हठयोगी' साधना-पद्धति को जानना आवश्यक है। कबीरवाणी में और गोरखनाथ की वाणी में जो समानता दिखाई पड़ती है उस का आधार 'हठयोग' ही है। डॉ० शिवकुमार शर्मा कबीर के बारे में लिखते हैं कि 'इनके साहित्य में इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, पट्ठल, त्रिकुटी, ब्रह्मरन्ध्र, सूर्य और चन्द्र आदि हठयोग के पारिभाषिक शब्द मिलते हैं।'[५]

गोरखनाथ ने अपनी वाणी में गुरु के महत्त्व को प्रतिपादित किया है गोरखनाथ कहते हैं-

गुरु कीजै गहिला, निगरा न रहिला,
गुरु बिन ज्ञान न पाइला रे भाइला।

गोरखनाथ के अनुसार योगमार्ग में सभी बाधाओं को दूर करने वाला अवधूत गुरु के पद का अधिकारी होता है। 'वह अवधूत जिसके वाक्य-वाक्य में वेद निवास करते हैं, पद-पद में तीर्थ बसते हैं, प्रत्येक दृष्टि में केवल्य या मोक्ष विराजमान होता है, जिसके एक हाथ में त्याग है और दूसरे हाथ में भोग और फिर भी जो त्याग और भोग दोनों में अलिप्त है।'[६]

नाथ-परम्परा का अनुसरण करते हुए संत कबीर ने भी गुरु को उस ब्रह्मा से श्रेष्ठ कहा है। गुरु की महत्ता कबीर ने योगियों से प्राप्त की। कबीर ने रामानंद को गुरु धारण किया और कह उठे कि गुरु मिलन से सब दु:ख दूर हो गया-

सद्‌गुरु के परताप ते मिटि गयौ सब दुख-दंद,
कह कबीर दुबिधा मिटी, गुरु मिलियां रामानंद।[७]

निवृत्तिकामी नाथों ने मुक्ति के लिए वैराग्य और गुरुकृपा को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने रहस्यमय तरीके से आध्यात्मिकता का प्रकाशन किया है। उलटबासियों, प्रतीकों और रूपकों में नाथों ने रहस्यमय भावना को अभिव्यक्त किया है। गोरखनाथ तथा अन्य नाथों ने इन्द्रिय-निग्रह पर विशेष बल दिया। डॉ० शिवकुमार शर्मा लिखते हैं कि 'इस सम्प्रदाय में इन्द्रिय-निग्रह पर विशेष बल दिया गया। इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण नारी है। अत: नारी से दूर रहने की भरसक शिक्षा दी गई।'[८] कबीर वाणी में भी गोरखवाणी की तरह नारी की निंदा की गई है। यह नाथों के इन्द्रिय-निग्रह-साधना का प्रभाव ही है जहां कबीर ने नारी को नर्क की खान कहा है।[९]

---

५. डॉ० शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृत्तियां, पृष्ठ संख्या-१५१
६. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. ३७
७. वहीं, पृष्ठ-११४
८. डॉ० शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृत्तियां, पृष्ठ संख्या-४६
९. डॉ० रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, पृ. २१७

www.thearyasamaj.org

नाथमत में माया का विरोध किया गया है। माया मानव के जीवन में साधना के क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा है। नाथों ने इसके परित्याग करने का उपदेश दिया। वहीं कबीर ने भी माया का विरोध किया। यह विरोध कबीर ने नाथमत से प्रभावित होकर किया। कबीर जी मानते हैं कि माया जीव और परमात्मा के मिलन के बीच सबसे बड़ी बाधा है। वे माया को महाठगिनी कह कर पुकारते हैं-

माया महा ठगिनि हम जानी
तिरगुन फांसि लिए कर डोलै,
बोलै मधुरी बानी
केशव के कमला होई बैठी,
सिव के भवन भवानी इत्यादि।[१०]

जाति-पाति, बाह्य आडम्बर, ऊंच-नीच, धर्म-अधर्म आदि बुराइयों के खण्डन के आधार पर कबीरवाणी और गोरखवाणी में समानता है। कबीर की खण्डनात्मक प्रवृत्ति नाथमत के प्रभाव से ही है। सामाजिक बुराइयों का खण्डन करते हुए गोरखनाथ कहते हैं-

सांग का पूरा ग्यान का ऊरा,
पेटा का तुटा डिम का सूरा।
बंदत गोरख न पाया जोग,
करि पाखंड रिझाया लोग।।

कबीरवाणी में भी ठीक इसी प्रकार बुराइयों के प्रति तीव्र विरोध दिखाई पड़ता है। कबीर कहते हैं-

पूजा सेवा नेम-व्रत गुड़ियन का खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं तब लग संसयमेल।।

नाथमत में मूर्तिपूजा के विरोध का प्रभाव भी कबीर पर यत तत्र देखा जा सकता है।[११]

गोरखनाथ और नाथमत के अनुयायियों ने उलटबांसियों का प्रयोग करके अपनी साधना का महत्त्व जनसाधारण को समझाया-

नाथ बोले अमृतवाणी,
बरसैगी कंबली भीजैगा पाणी।

कबीरवाणी में उलटबांसियों के प्रयोग से विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर ने इन्हें 'उल्टावेद' कहकर पुकारा है। जिस प्रकार वेदों में ज्ञान का भण्डार निहित है, ठीक उसी प्रकार उलटबासियों में कबीर के ज्ञान का महत्व दृष्टिगत होता है। उन्होंने गोरखनाथ के समान ही अपने विचार व्यक्त किए-

कबीरदास की उलटी वाणी, बरसे छप्पर भीजै पाणी।

नाथमत के ग्रंथ 'हठयोगप्रदीपिका' में लिखा है कि किसी को अद्वैत मान्य है तो कोई द्वैत का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु इन दोनों से परे द्वैताद्वैतविलक्षण समरस तत्व को नहीं पहचानते।[१२] कबीर भी इस मत का प्रतिपादन करते हैं।[१३]

भाषा की दृष्टि से भी कबीर के चिंतन

---

१०. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. २३७
११. स. माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रंथावली, पृ. ७४
१२. डॉ० पारसनाथ तिवारी, कबीरवाणी, पृ. १४३
१३. वही, पृष्ठ-१४३

www.thearyasamaj.org

और गोरखवाणी में साम्य है। नाथमत के अनुयायियों ने परम्परागत ब्रजभाषा या नागर अपभ्रंश के स्थान पर जनसाधारण भाषा का सहारा लिया, वहीं कबीर ने अपनी वाणी में जनभाषा को ही अपनाया। नाथमत में पुस्तकीय विद्या को नकारा गया है वहीं कबीर के ज्ञान का भण्डार भी पोथियों से सम्बन्धित नहीं था। उन्होंने जो ज्ञान अर्जित किया वह अनुभव पर आधारित था। वे कहते हैं-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पण्डित भया न कोय।
एकै आखिर पीव का, पढ़ै सुपंडित होय।।[१४]

कबीरवाणी में जो सिद्धांत निरूपण हुआ है वह गोरखनाथ के मत से उन्हें दायरूप में प्राप्त हुआ। गोरखनाथ के मत में योगी के चिह्न मुद्रा, नाद, विभूति और आदेश बताए गए हैं। मुद्रा का बड़ा माहात्म्य है। जिसके दर्शन से देवगण प्रसन्न होते हैं और असुरगण भाग जाते हैं। यह साक्षात् कल्याणदायिनी है।[१५] गोरखनाथ की वाणी के समान ही कबीर वाणी में भी मुद्रा का विधान हुआ है। किन्तु नाथ जहां कान फाड़ कर मुद्रा पहनने की बात कहते हैं वहीं कबीर मन में ही मुद्रा धारण करने की बात कहते हैं। वे कहते हैं असली योगी मन में मुद्रा धारण करता है और मन में ही आसन लगाता है।[१६]

कबीरवाणी और गोरखवाणी में समानता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि जो सिद्धांत गोरखनाथ ने अपने जीवन में अपनाए कबीर ने जस-तस उनको अपनाया। गोरखवाणी ही नहीं कबीर एक ऐसे चौराहे पर खड़े थे जहां से अलग-अलग मार्गों से नाथों की योगसाधना, गुरु महत्त्व, कुण्डलिनी योग, उलटबासियां, इस्लाम के एकेश्वरवाद, अवतारवाद का खण्डन, अद्वैत से साधनापक्ष, सिद्धों से गूढ़ोक्तियां, वैदिक परम्परा का खण्डन, बौद्धमत, शैवमत आदि सिद्धांत कबीर तक पहुँचे और कबीर ने उन्हें अपने जीवन का और वाणी का मूलाधार बनाया। कबीरवाणी में जो प्रेमतत्व पाया जाता है वहां गोरखनाथ के प्रेमतत्व की समानता दिखाई पड़ती है। कबीरवाणी और गोरखवाणी में साम्य देखते हुए यही कहा जा सकता है कि जो कार्य नाथों से अधूरा रह गया था उसे कबीर ने पूरा किया, भले ही इसके लिए उन्हें अक्खड़ ही क्यों ना होना पड़ा।

एस० जी० एच० आर० एस० कालेज, चब्बेवाल

१४. डॉ० श्यामसुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ. ३०
१५. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. ३५
१६. डॉ० रामकिशोर, कबीर ग्रंथावली, पृ. ४३३

www.thearyasamaj.org

श्रीमद्भागवतपुराण के ज्ञान-यज्ञ का सामाजिक वैशिष्ट्य

– श्री नवीन शर्मा

संसार में प्राय: दृष्टिगोचर होता है कि अपनी प्रवृत्तियों की प्रधानता के अनुसार ही मनुष्य तत्-तत् कार्यों में प्रवृत्त होता है। उपासना के क्षेत्र में भी यह तथ्य शत-प्रतिशत ग्राह्य है। भावना-प्रवृत्ति प्रधान मनुष्यों के द्वारा भक्ति-मार्ग का, क्रिया-प्रवृत्ति प्रधान मनुष्यों के द्वारा कर्म-मार्ग का तथा बुद्धि-प्रवृत्ति प्रधान मनुष्यों के द्वारा ज्ञान-मार्ग का अनुसरण किया जाता है। गीता के अनुसार संसार में ज्ञान के समान पवित्रता एवं शुद्धता प्रदान करने वाला कोई भी तत्त्व विद्यमान नहीं है।[१] भागवतपुराण में यज्ञ को भगवान् का स्वरूप मानकर ज्ञान के उपदेश को उस यज्ञ की दक्षिणा के रूप में स्वीकार किया गया है।[२] उपासना के ज्ञान-मार्ग का जहां आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है, वहीं इसके सामाजिक दृष्टि से वैशिष्ट्य को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। समाज के सभ्य एवं शिष्ट मनुष्य के लिए ज्ञान एक आवश्यक तत्त्व है। ज्ञान के माध्यम से ही मनुष्य समाज में प्रतिष्ठा तथा प्रशंसा का पात्र बनता है। भागवतपुराण के ज्ञान-यज्ञ का भी सामाजिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

भागवतपुराण में त्रिविध साधना-मार्ग के अन्तर्गत सर्वप्रथम ज्ञान-मार्ग का उल्लेख किया गया है।[३] ज्ञान-मार्ग का उद्देश्य आत्मा तथा ब्रह्म की एकता की अनुभूति कराना है।[४] समाज में जब मनुष्य सभी प्राणियों में एक ही आत्म-तत्त्व की अनुभूति करेगा तथा आत्म-तत्त्व को परमात्म-तत्त्व के साथ एकीभूत जानेगा, तब मनुष्य का किसी भी अन्य प्राणी के साथ स्वत्व-परत्व का भेदभाव भी नहीं होगा। वह सभी प्राणियों को अपने समान ही देखते हुए उनसे सम-व्यवहार करेगा। भागवतपुराण के अनुसार विवेकी पुरुष संसार की नश्वरता का ज्ञान हो जाने पर संसार से विरक्त हो जाता है।[५] समाज में देखा जाता है कि जिस मनुष्य में अत्यधिक धन-सुखादि अर्जित करने की लालसा बढ़ जाती है, वह इस असार संसार की नश्वरता के ज्ञान से विमुख हो

१. गी०, ४/३८
२. भा० पु०, ११/१९/३९
३. वही, ११/२०/६
४. वही, ६/१६/६३
५. वही, ११/१९/१७

www.thearyasamaj.org

जाता है। अपनी वासनाओं की पूर्ति ही उसके लिए मुख्य हो जाता है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति में वह उचित एवं अनुचित साधन का विचार करने में भी अक्षम हो जाता है। जब मनुष्य अपने कार्य के अनुकूल किए गए परिश्रम से प्राप्त धन से सन्तुष्ट नहीं होता, अत्यधिक धनार्जन की लालसा रखता है तो वह लोगों को उनका काम पूर्ण करने का आश्वासन देकर उनसे धन ऐंठता है। इस स्थिति में ज्ञान-यज्ञ संसार को नश्वर बता कर उससे विरक्त होने का उपदेश देता है।

भागवतपुराण के अनुसार अहङ्कार निर्मूल है। मन, वाणी, प्राण और शरीर सभी अहङ्कार के कार्य हैं। इसलिए विवेकी पुरुष ज्ञानरूपी तलवार को तीक्ष्ण बनाकर अहङ्कार का मूलोच्छेद करके तृष्णा से मुक्त हो जाता है।[६] समाज की उन्नति में अहङ्कार एक विरोधी तत्त्व है। यह सर्वविदित ही है कि एक अहङ्कारी व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ समायोजित होने में कठिनाई का अनुभव करता है। अहङ्कार ही मनुष्य के विनाश का कारण बनता है। महाबली रावण विविध विद्याओं एवं कलाओं में निपुण तथा विद्वान् होने पर भी अहङ्कार के कारण विनाश को प्राप्त हुआ। लोक में भी देखा जाता है कि अहङ्कारी व्यक्ति से अन्य मनुष्य दूरी बनाकर रखते हैं। अहङ्कारी व्यक्ति सर्वदा अपनी महिमा का ही गुणगान करता है तथा दूसरों से भी अपनी प्रशंसा के वाक्य सुनना चाहता है। उसे यह अनुभव होने लगता है कि जो उसके अनुकूल है, वही यथोचित है। जब किसी वस्तु या व्यक्ति को प्रतिकूल अनुभव करता है तो वह अहङ्कार के वशीभूत होकर अपना नियन्त्रण खो देता है और अनुचित कृत्य से अपने जीवन में अवनति को प्राप्त करता है। वस्तुतः विनम्र व्यक्ति ही समाज में सम्मान एवं उच्चपद को प्राप्त होते हैं। नीतिशास्त्रों में भी विनम्रता की भावना को पर्याप्त बल मिला है। अहङ्कार की भावना से युक्त मनुष्य सर्वत्र निन्दा के पात्र ही बनते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है-

झुकता वही है, जिसमें जान होती है।
वरना अकड़ तो, मुर्दे की पहचान होती है।।

इस स्थिति में ज्ञान-यज्ञ हमें अहङ्कार का मूलोच्छेद करके तृष्णाओं से मुक्त होने का उपदेश देता है।

भागवतपुराण के अनुसार संसार का मूल कारण अज्ञान है। इस लिए विवेकी पुरुष को द्वैतभाव का परित्याग करके स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर में होने वाली आत्मबुद्धि का नाश कर देना चाहिए।[७] एक सामाजिक प्राणी को अवश्य ही ज्ञानवान् होना चाहिए। ज्ञान का विरोधी अज्ञान है। ज्ञान की अनुपस्थिति में

६. भा० पु०, ११/२८/१७

७. वही, ११/१०/११

www.thearyasamaj.org

अज्ञान का भाव प्रबल हो जाता है तथा ज्ञान के उदय होने पर अज्ञान दूर भाग जाता है। मनुष्य के अपने परिवार एवं समाज के प्रति कुछ उत्तदायित्व नियत होते हैं। विवेकी पुरुष उन उत्तरदायित्वों का निर्वाह अच्छी प्रकार से कर सकता है जिससे वह अपने पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को खुशहाल बना सके। इसके विपरीत जो मनुष्य अज्ञान की प्रबल भावना से युक्त है, वह अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्णतया सचेत नहीं रह सकता। विकट परिस्थितियों में निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो पाता। वह यह भी निर्णय नहीं ले पाता कि जिन साधनों का आश्रय लिया जा रहा है, वे साधन समाजोपयोगी भी हैं अथवा नहीं। अन्तत: वह अपने पारिवारिक अथवा सामाजिक जीवन को अज्ञानरूपी अन्धकार में डुबो देता है। वह दूसरों से ईर्ष्या, क्रोध, वैर, द्वेष की भावना रखता है। उसकी यह भावना समाज में भेदभाव की भावना को जन्म देती है। इस स्थिति में भागवतपुराण का ज्ञान-यज्ञ सर्वदा द्वैतभाव का परित्याग करके स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर में होने वाली आत्मबुद्धि का नाश करने का उपदेश देता है।

भागवतपुराण में वर्णित त्रिविध अद्वैत-भाव के अन्तर्गत भावाद्वैत तथा द्रव्याद्वैत में भेदभाव को समाप्त करने का उपदेश किया गया है।[८] भावाद्वैत में वस्त्र को तन्तुरूप बताकर दृष्टान्त देकर सभी की एकता का विचार किया गया है।[९] द्रव्याद्वैत में संसार के समस्त प्राणियों के स्वार्थ एवं भोग को एक बताकर उनके मध्य स्वत्व एवं परत्व का भेद न रखने को कहा गया है।[१०] वस्तुत: हम द्वैतभाव से ही प्रत्येक व्यक्ति में रङ्ग, रूप, जाति, समुदाय, भाषा तथा रुचि के आधार पर भेदभाव रखते हैं। किन्तु ज्ञान-यज्ञ के अन्तर्गत वर्णित अद्वैत निषेध करके एकता की भावना का समर्थन करता है।

ज्ञान-मार्ग के अधिकारी के विषय में कहा गया है कि जो विद्या और श्रुति-सम्पन्न है, आत्मवान् है, अनुमानादि के आधार पर परोक्ष ज्ञान पर आश्रित नहीं है और चराचर जगत् को मायामात्र स्वीकार करता है, वही ज्ञान-मार्ग का अधिकारी है।[११] समाज में भी एक प्रशिक्षित व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रशिक्षित व्यक्ति समाज की उन्नति अच्छी प्रकार से कर सकता है तथा आदर्श समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। श्रुति में भी चारों वर्णों की वेदपुरुष के अङ्गों में कल्पना कर समाज में उनकी समानरूप से महत्वपूर्ण भूमिका को वर्णित किया गया है।[१२] इसलिए भागवतपुराण में ज्ञान-मार्ग का अधिकारी विद्या तथा श्रुति का

८. भा० पु०, ७/१५/६२ ९. वही, ७/१५/६३ १०. वही, ७/१५/६५
११. वही, ११/१९/१ १२. ऋ० वे०, १०/९०/१२

www.thearyasamaj.org

स्वाध्याय कर चुके व्यक्ति को स्वीकार किया गया है।

भागवतपुराण का ज्ञान-यज्ञ भक्ति के अङ्गरूप में वर्णित हुआ है। इसमें उपासना के अन्तर्गत ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा एवं भक्ति को प्रमुख तत्त्व स्वीकार किया गया है।[१३] ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा तथा भक्ति का सामाजिक दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त भागवतपुराण में विवेकी पुरुष के लिए श्रद्धा, भगवद्भाव, समत्व, निर्वैर, अनासक्ति, ब्रह्मचर्य, मौन, सन्तोष, मितभोजन, एकान्तसेवन, शान्ति, मैत्री और करुणा को अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।[१४] समाज में रहते हुए मनुष्य को कार्य के प्रति श्रद्धावान् होना अनिवार्य है। हृदय में भगवद्भाव रखने से वह मानसिक शान्ति का अनुभव करता है। समत्व का भाव उत्पन्न होने से समाज का प्रत्येक व्यक्ति परस्पर स्नेह-भाव रखते हुए एक-दूसरे की सहायता करता है। इससे परस्पर वैरभाव की भावना समाप्त हो जाती है। अनासक्ति की भावना से समाज में मनुष्य किसी भी अनुचित साधन अथवा कृत्य का आश्रय नहीं लेगा। ब्रह्मचर्य से परस्त्री को माता के समान स्वीकार करेंगे। मौन से अपनी वाणी पर संयम रखना सीख लेंगे। सन्तोष से लोभ-प्रवृत्ति का नाश कर देंगे। मित-भोजन के द्वारा अपनी जिह्वा पर संयम रखने तथा शरीर को रोगों से मुक्त रखने में सहायक होंगे। दिनभर की भागदौड़ के परिणामस्वरूप अशान्त अपने मन को शान्त रखना सीख लेंगे। परस्पर कलह न करके शान्तभाव से रहना सीख लेंगे। करुणा के द्वारा समाज का प्रत्येक मनुष्य दूसरों के कष्ट को अपना कष्ट समझकर समाज के प्रति करुणा, उदारता की भावना रखेगा।

भागवतपुराण का ज्ञान-यज्ञ समदृष्टि पर बल देते हुए कहता है कि जो पुरुष ज्ञानदृष्टि के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों एवं वस्तुओं में भगवान् का ही रूप स्वीकार करके, समानदृष्टि रखता है, वही वास्तव में विवेकी है।[१५] समाज में विविध प्रकार की भेदभावरूपी दोषदृष्टि से मुक्त होना ही समदृष्टि है।

अतः भागवतपुराण के ज्ञान-यज्ञ के सामाजिक वैशिष्ट्य पर दृष्टिपात से यह ज्ञात होता है कि ज्ञान-यज्ञ आदर्श-समाज के निर्माण में सहयोगी कारकों तथा विचारों को अपने अन्तर्गत समाविष्ट किए हुए है। इस ज्ञान-यज्ञ के द्वारा ही वर्तमान समाज की दशा एवं दिशा में अपेक्षित सुधार किया जा सकता है।

शोधछात्र, वी०वी०बी०आई०एस०एण्ड आई०एस०, साधु आश्रम, होशियारपुर।

१३. भा० पु०, ११/१९/१३ १४. वही, ३/२७/७-८ १५. वही, ११/२९/१३-१४

www.thearyasamaj.org

आधुनिक उपन्यास द्वासुपर्णा में वर्णित संस्कृति

– डॉ० सरिता यादव

संस्कृत का आज पुनरभ्युदय हो रहा है। चक्रनेमिक्रमेण इसकी दशा पुन: ऊपर उठ रही है। लोग इसके गौरव को फिर से पहचानने लगे हैं। इसके प्रति उपेक्षा एवं अवहेलना के भाव दूर होते जा रहे हैं, और श्रद्धा एवं अभिरुचि की भावनाओं का उन्मेष हो रहा है। आज जिस भारतीयता, भारतीय संस्कृति और संस्कृत-साहित्य का अपने को हम दावेदार समझते हैं, अतीत से उसकी ख्याति को हम तक पहुंचाने में जिन विशिष्ट व्यक्तियों का योगदान रहा है, उन्हें आज हम पंडित या विद्वान् कहते हैं। संस्कृत भारत की अपनी मूलभाषा है जिसका 'देववाणी' दूसरा नाम अतिप्राचीनता का द्योतक है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक जीवन की पूरी व्याख्या संस्कृत-भाषा के वाङ्मय में समाविष्ट है। भारत के उन ज्ञानमना महामनस्वियों के व्यक्तित्व एवं अध्यवसाय का आज हम अन्दाजा नहीं लगा सकते, जिन्होंने ऐसे सहस्रों ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिन्होंने किसानों के खेतों से कण-कण चुग कर जीवननिर्वाह करते हुए ऐसे ग्रन्थों का निर्माण किया। महर्षि वाल्मीकि, व्यास आदिशंकराचार्य इत्यादि ऐसे अनेक विद्वान् इस भारतभूमि पर हुए हैं जिन के एक ही ग्रन्थ के आमूल अध्ययन के लिए हमें एक दीर्घायु जीवन की आवश्यकता है। वे सब बातें प्राचीन हैं किन्तु वर्तमान युग में भी ऐसे लेखक हुए हैं, जिनमें द्वासुपर्णा के लेखक का यहां वर्णन किया जा रहा है। द्वासुपर्णा उपन्यास में भी संस्कृति का पर्यालोचन किया गया है। लेखक श्री रामजी उपाध्याय की जन्मभूमि उत्तरप्रदेश के बलिया मण्डल के अन्तर्गत सरयू के किनारे मलेजीति ग्राम है। बाल्यकाल में ग्रामशाला के मण्डल-विद्यालय में गुरुओं के आश्रित रहे। इसके पश्चात् वाराणसी में तैलङ्गवंशीय महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणशास्त्री के चरणों का भ्रमर बनकर संस्कृत-महावृक्ष के प्रारम्भिक कुसुमों को चखा। इसके पश्चात् प्रयाग विश्वविद्यालय में डॉ० बाबूराम सक्सेना महोदय के श्रीचरणों में एम.ए.,डी.फिल की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। उपाध्याय जी १९४७ संवत्सर से लेकर १९८० तक सागर विश्वविद्यालय में व्याख्याता, प्रवाचक, प्राध्यापक एवं कलासंकाय के अध्यक्ष पद पर अधिष्ठित रहे। अध्यापन-काल में १९६३ में वह सागर विश्वविद्यालय से डी.लिट. की उपाधि 'प्राचीन भारतीय साहित्यस्य की

www.thearyasamaj.org

सांस्कृतिक भूमिका' विषय पर शोधप्रबन्ध लिखकर प्राप्त की।

उपाध्याय जी की संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी भाषा में प्रणीत कृतियां इस प्रकार हैं- *Sanskrit & Prakrit Mahakavyas*, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, आधुनिक संस्कृत नाटक, महाकवि कालिदास, द्वासुपर्णा संस्कृत निबन्धावली आदि कृतियां हैं- बीस वर्षों तक उन्होंने सागरिका त्रैमासिक संस्कृत-शोध-पत्रिका का सम्पादन किया। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के कार्यों से उत्पन्न वैदुष्य से वह १९७८ में पुण्यपत्तन में अखिल भारतीय प्राचीन परिषद् साहित्य विभाग के अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित किये गए।

द्वासुपर्णा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय गुरुकुल शिक्षा की प्रथा थी। गुरुकुलों में गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करने राजाओं के पुत्र भी ब्रह्म-विद्या एवं धर्नुविद्या आदि के ज्ञान के लिए आते थे। इसी प्रकार सुदामा और कृष्ण बलराम भी गुरुकुल में प्रवेश लेते हैं कृष्ण और बलराम का सुदामा के द्वारा उपनयन संस्कार किया जाता है कृष्ण सुदामा को अपना ज्येष्ट भ्राता मानते थे और इसके साथ समय व्यतीत करते-करते दोनों घनिष्ठ मित्र बन जाते हैं। इस प्रकार गुरुकुल की शिक्षा पूरी होने पर उनका समावर्तन संस्कार किया जाता है और वह सब अपने-अपने घर वापस आ जाते हैं और कृष्ण सुदामा की घनिष्ट मित्रता को इस उपन्यास में प्रदर्शित किया गया है और इसकी संस्कृति को इस प्रकार कहा गया है।

वर्णव्यवस्था- द्वासुपर्णा में वैदिक पद्धति के अनुसार वर्णों का चयन किया गया है। लोग शाकाहारी भोजन ग्रहण करते हैं जीवमात्र का कल्याण करते हैं, दोनों सन्ध्याओं में हवन करते हैं। ब्राह्मण अध्यापन कार्य भी कराते हैं, प्रजा की रक्षा करने वाले क्षत्रिय कहलाते हैं, वैश्य कृषि आदि का कार्य करते हैं और शूद्र सेवा का कार्य करते हैं।

धार्मिक स्थिति- श्रीरामजी उपाध्याय के अनुसार उस समय में धार्मिक सहिष्णुता थी। तत्कालीन समाज श्रीकृष्ण का ब्रह्म का समान रूप से आदर करता है। उस समय देश में वैदिक धर्म का प्रचार है। वैदिक यज्ञों, पूजा-पाठ, आदि क्रियाएँ प्रचलित थी। यज्ञादि में राम जी उपाध्याय का अटल विश्वास दिखाई देता है। वह यज्ञ करना अपना नित्य कर्त्तव्य समझते हैं। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण तथा यज्ञादि से पवित्र होने का कथन किया गया है।

विवाह- विवाह एक संस्कार है जिसमें वर-वधु जीवनपर्यन्त साथ रहने का व्रत लेते हैं। भावात्मक एकता के अभाव में दाम्पत्यजीवन साररहित हो जाता है। विवाह से पूर्व कन्या के माता-पिता वर एवं उसके माता-पिता के लिए वस्त्र, आभूषण आदि उपहारस्वरूप देते थे। आज की तरह ही उस समय भी विवाह से एक दिन पूर्व वर के शरीर में तैलयुक्त उबटन का लेप करके सुगन्धित जल से स्नान कराया जाता था। कन्या के शरीर पर भी उबटन व पक्वतैल का लेप करके स्नान कराया जाता था। जो कुछ

www.thearyasamaj.org

आज समाज में वैवाहिकप्रथा दिखाई देती है वही सारी प्रथा रीति-रिवाज द्वासुपर्णा में भी लेखक द्वारा वर्णित किए गए हैं।

नगर का जीवन- द्वासुपर्ण के अनुसार नगर में मध्यम लोग अधिक रहते थे। वहां अट्टालिकायें होती थीं। चौराहे के पास भवन होते थे नगर में प्रवेश के लिए पुरद्वार होते थे। पुरद्वार तोरणों से सजाये जाते थे। किवाड़ कला पूर्ण होते थे। नगरों में पक्षियों के लिए रक्षागृह होते थे। मयूर व कबूतर गाय आदि भी पाले जाते थे नगरों के चारों ओर उपवन व खाई होते थे। खाईयों में जल भरा रहता था। नगर में जगह-जगह पर देवताओं के मन्दिर बनाए जाते थे।

मथुरा- कृष्ण और बलराम बाल्यावस्था में मथुरा में नहीं रहते थे। वे गुरुकुल में विद्या प्राप्त करने गये वहीं इनकी सुदामा से मित्रता हुई। सुदामा तथा श्रीकृष्ण की मित्रता एक उदाहरण के रूप में ली जाती है।

मांगलिक कार्य एवं पदार्थ- आरती, न्यौछावर, घृत तथा दर्पण का दर्शन, ब्राह्मण एवं आत्मीय जन की अर्चना, केशों में दूर्वा की स्थापना आदि मांगलिक कार्य थे।

मांगलिक पदार्थ- गौमूत्र स्नान, स्वस्तिवाचन, अभिषेक, दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना, पुष्पवृष्टि मंगलगान तथा स्तुति आदि भी मांगलिक कार्य समझे जाते थे। हरिद्रा-कुंकुम-मिश्रित चन्दन द्वारा लिप्त दूर्वांकुर और नारियल ये मांगलिक पदार्थ थे।

शगुन- यात्राकाल में दीप एवं कलश का दर्शन, गाय-देवता, ब्राह्मण का दर्शन माला तम्बूल आदि का दान भी शुभप्रद होता था। इसी प्रकार मृत्तिका एवं गन्धशिल्पा की वन्दना भी शुभ थी।

दुर्वा, जलपूर्ण कलश, तिल, मृत्तिका, अंगुरपंक धान्य आदि पदार्थ मांगलिक माने जाते थे। सुगन्धित जल, पुष्प दधि एवं अक्षत ये पूजा के साधन थे।

सामाजिक आचार- प्रातःकाल उठकर बड़ों को प्रणाम किया जाता था। अत्यधिक पूज्य के लिए साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता था। प्रणाम करते समय नम्रता का व्यवहार किया जाता था, श्रीकृष्ण और बलराम के द्वारा गोवर्धन पर्वत को साष्टांग प्रणाम का वर्णन इस बात का प्रमाण है। श्रीकृष्ण सुदामा और बलराम अपने गुरुओं को अधोमुख होकर प्रणाम करते हुए वर्णित हुए हैं। गुरुजनों से बात करते समय भी नम्रता का व्यवहार किया जाता है। छोटे लोगों के प्रति उत्कण्ठित होते हुए भी बड़े लोग उनके आगमन पर गम्भीरता का आश्रय लेकर मर्यादा की रक्षा करते थे।

पुत्र जैसे-जैसे बड़ा होता था वह अपने माता-पिता से दूर-दूर रहता हुआ मर्यादा की रक्षा करता था। पिता-पुत्र को उचित शिक्षा देने के लिए उसके समक्ष गम्भीरता का आचरण करता था। पुत्र अपने पिता के समक्ष चंचलता का व्यवहार नहीं करता था। पिता का स्थान माता से न्यून था। सर्वप्रथम माता को तत्पश्चात् पिता को उसके बाद अन्य लोगों को प्रणाम किया जाता था। गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जाता था। अतिथि विशेष

www.thearyasamaj.org

अभिवादन का पात्र होता था। प्रार्थनापूर्वक उसको आसन पर बिठाया जाता था। सभा में वृद्धजन दाहिनी ओर बैठते थे। उनके पीछे अवस्थाक्रम से लोग बैठते थे। पत्नी पति की आज्ञा का पालन करती थी। किसी भी कार्य को करने से पूर्व पूज्य पुरुष या घर में बड़े व्यक्ति की सम्मति ली जाती थी। भिक्षुक सहिष्णु होते थे। किसी भी प्रकार की हत्या करना घोर अपराध माना जाता था। गो-हत्या से तो व्यक्ति कलंकित ही हो जाता था। इतना ही नहीं साधारण जीव-हत्या के लिए भी उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता था।

उत्सव- सभी प्रकार के उत्सव समाज में प्रचलित थे, पर होली का उत्सव मथुरावासियों में युद्ध की तरह मनाया जाता था। इस अवसर पर स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी गायन, नृत्य तथा युद्ध करते हुए क्रीड़ा करते थे। इस युद्ध में दो पक्ष होते थे- १. स्त्रियों का पक्ष २. पुरुषों का पक्ष। उसमें लाठियों द्वारा एक दूसरे को गिराने तथा पिचकारी द्वारा रंग प्रक्षेपण का कार्य होता था। मथुरावासी 'तुम' की जगह तू का प्रयोग करते थे। वे विश्रामवाचक सुख के लिए 'चेन' शब्द का प्रयोग करते थे। उत्सव के समय स्त्रियां नृत्य, गायन व वादन करती थीं। हरिद्रा एवं तैल का छिड़काव करती थीं।

वेशभूषा- पुरुष धोती-कुर्ता पहनते थे। स्त्रियां साड़ी पहनती थीं। उनके मुख पर घूंघट रहता था। वस्त्रों पर छोटी-छोटी घंटियां लगी होती थीं।

पुरुषों का आभूषण- बाजूबन्द कुहनी के ऊपर भुजा में पहना जाता था। कंगन मणिबन्ध में एवं मुद्रिका अंगुली में पहनी जाती थी। करधनी कमर में पहनी जाती थी।

स्त्रियों के आभूषण- ललाटिया शिर पर धारण की जाती थी। कान में कर्णफूल धारण किये जाते थे। मुक्ताकल नाक में पहना जाता था। गले में हार कटि में मेखला पैर में पायजेब एवं नुपूर, पैर की अंगुली में बिछिया धारण की जाती थी। स्त्रियां केशों में रत्न गूंथती थी।

पुष्पाभूषण- पुष्पों के आभूषण भी धारण किये जाते थे। स्त्रियां वेणी में पुष्प गूंथती थीं। नवीन पत्तों से भी अपने को अलंकृत करती थीं।

प्रसाधन- स्त्रियों द्वारा केशों को सुखाने के लिए धूप का प्रयोग होता था। ललाट पर अगरु चन्दनरस व कस्तूरी का तिलक लगाती थीं। कुंकुम का तिलक भी लगाया जाता था। स्त्रियां पैरों में महावर लगाती थीं।

मनोविनोद- काव्यपाठ तथा शास्त्रार्थ मनोरंजन के साधन थे। वाद्य का प्रयोग कलाओं के अनुसार होता था। वे नृत्य को कला की दृष्टि से देखते थे। इस प्रकार से द्वासुपर्णा उपन्यास में श्रीरामजी उपाध्याय ने तत्कालीन संस्कृति को प्रदर्शित किया है।

- शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग, वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

www.thearyasamaj.org

हठयोगी के लिए स्थान तथा आहार

– श्री नरेश कुमार

योग हमारे प्राचीन ऋषियों, महर्षियों, तपस्वियों की साधना का प्रमुख साधन है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही योगविद्या एक ऐसी विद्या रही है जिसका सार्वकालिक एवं सार्वभौम महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों, महाभारत तथा दर्शनों में इसकी विस्तृत चर्चा मिलती है। योग शब्द अपने-आप में बड़ा व्यापक है। यह मुख्यत: तत्त्वानुभूति, स्थायी शान्ति तथा आनन्दानुभूति का उपाय है। इसका सम्बन्ध भौतिक जगत् के समस्त क्रियाकलापों से लेकर अन्तर्जगत् के असीम विस्तार तक है। योग का विषय ऐसा गम्भीर है कि इसे केवल शास्त्रीय ज्ञान द्वारा नहीं समझा जा सकता, अपितु आचरण में लाने पर ही सम्भव है। यद्यपि योग का मुख्य विषय आध्यात्मिक लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करना है। परन्तु वर्तमान में सामाजिक विकास के लिए भी योग के अंगों का उपयोग किया जाता है। इसकी उपयोगिता का कारण शारीरिक लाभ है। इस समय योग की लहर भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी उठी है और २१ जून को अन्ताराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाया जाता है। योग की इस लोकप्रियता का रहस्य यह भी है कि यह लिङ्ग, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, क्षेत्र एवं भाषा की संकीर्णताओं से कभी आबद्ध नहीं रहा। साधक, चिन्तक, वैरागी, अभ्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, युवा, वृद्ध, अतिवृद्ध, रोगी कोई भी इसका सान्निध्य प्राप्त कर लाभान्वित हो सकता है। योग जीवन का वह शास्त्र है, जो साधक को श्रेष्ठ जीवन जीने का मार्ग बतलाता है। भगवान् शिव का कथन है कि योगमार्ग से उत्तम कोई मार्ग नहीं है।[1]

योग शब्द का अर्थ क्रमश: जोड़ना, समाधि और संयमन होता है। यद्यपि योगशास्त्र के आदिप्रणेता हिरण्यगर्भ को माना जाता है[2] तथापि सम्प्रति योगदर्शन का प्रतिनिधि तथा बहुप्रचारित ग्रन्थ महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र ही है। इसमें सूत्रकार ने योग की परिभाषा चित्तवृत्तियों का निरोध कही है।[3] यह योग शब्द जिस प्रकार विभिन्न अर्थों और परिभाषाओं में व्याप्त होकर अनेक क्षेत्रों में स्थिर हो गया है, उसी प्रकार योग से सम्बंधित चिन्तनधारा भी बहुत प्राचीनकाल से विकसित हुई है। इसी क्रम में योग के अनेकों अङ्ग तथा उपाङ्ग हुए, जिसमें 'हठयोग' का प्रमुख स्थान है। यह दैहिक और मानसिक विकास के लिए विश्व की प्राचीनतम प्रणाली है। जिसका शताब्दियों से भारत के योगियों द्वारा अभ्यास किया गया है। इस हठपरम्परा के प्रवर्तक भगवान् शिव हैं। यह स्वात्मारामयोगिन्द्र ने हठयोगप्रदीपिका में हठयोग के सिद्ध पूर्वजों का स्मरण करते हुए स्पष्ट किया है। यथा- सर्वश्री आदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शाबर, आनन्दभैरव, चौरङ्गी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, बिलेशय मन्थन, भैरवयोगी, सिद्धि, बुद्ध, कन्थडि, कोरण्टक, सुरानन्द, सिद्धिपाद, चर्पटी, कानेरी, पूज्यपाद, नित्यनाथ, निरंजन, कपाली बिन्दुनाथ, काकचण्डीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, घोडाचोली, टिण्टिणि, भानुकी, नारदेव, खण्ड, कापालिक आदि।[4]

१. सिद्धसिद्धान्तपद्धति, ५.२।
२. योगवार्तिक, १.१।
३. योगसूत्र, १.२।
४. हठयोगप्रदीपिका, १.५-९।

www.thearyasamaj.org

श्री नरेश कुमार

'हठयोगप्रदीपिका' प्रचलित हठयोगपरम्परा के सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है।

'हठ' शब्द की रचना 'ह' और 'ठ' दो रहस्यमय एवं प्रतीकात्मक अक्षरों से हुई है। 'ह' का अर्थ सूर्य (नाड़ी) और 'ठ' का अर्थ चन्द्र (नाड़ी) है। अर्थ इन दोनों का संयोजन ही योग है। इस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र के संयोग का माध्यम हठयोग है।[५]

स्थान- योगाभ्यास आरम्भ करने से पूर्व स्थान तथा आहार के विषय में जानना परमावश्यक है क्योंकि इसकी जानकारी के बिना योगाभ्यास में सिद्धि नहीं, अपितु हानि होती है। इसलिए हठयोगी के लिए उत्तम स्थान तथा उपयुक्त आहार की व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है। यहां स्थान निर्धारण के विषय में कहा गया है कि हठयोगी को अच्छे राज्य में, धार्मिक देश में, जहां से अच्छी भिक्षा प्राप्त हो सके, उपद्रवों से रहित, ऐसी कुटिया में वास करना चाहिए, जो एकान्त में हो तथा धनुषप्रमाण अर्थात् चार हाथ प्रमाण पर्यन्त, जिसके चारों ओर पत्थर, अग्नि और जल न हो। ऐसे श्रेष्ठ राज्य में मठिका बनाकर हठयोगी को योगाभ्यास करना चाहिए तथा उस मठिका का द्वार छोटा हो, छिद्र और गड्ढों से रहित हो, भूमि समतल हो, उसका स्थान ऊंचा-नीचा न हो, गोमयलिप्त, कीट रहित, कुटी के बाहर के स्थान में एक मण्डप बना हो, जिसमें वेदी और सुन्दर कूप हो, जो चारदीवारी से युक्त हो।[६] स्थान के विषय में प्राचीनकालीन श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी कहा गया है कि ऊंचे-नीचे स्थान से रहित, शुद्ध, पत्थरों से रहित, अग्नि और बालू से वर्जित, जल तथा शब्दआश्रय के द्वारा मनोनुकूल लगने वाले स्थान पर अर्थात् जो मनोहारी तथा चक्षुप्रिय हो ऐसी निर्वात एकान्त गुफा को साधक योगसाधना के लिए अपना आश्रय बनाये।[७] गीता के अनुसार शुद्ध भूमि में जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाल और वस्त्र बिछे हों, जो न बहुत ऊंचा हो, न बहुत नीचा हो, ऐसे अपने आसन को स्थिर कर, उस आसन पर बैठकर, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योगाभ्यास करे।[८] इसी प्रकार के भाव घेरण्डसंहिता[९] तथा योगतत्त्वोपनिषद्[१०] में दृष्टिगोचर होते हैं।

आहार- मनुष्य जैसा आहार करता है वैसा ही उसका अन्तःकरण बनता है। घेरण्डसंहिता में योगियों के लिए मिताहार की चर्चा की गई है और जो अभ्यास काल में मिताहार नहीं करता उसके शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और योगसिद्धि से वंचित रह जाता है।[११] हठयोगप्रदीपिका में हठयोगियों के लिए पथ्य तथा अपथ्य आहार का निर्देश किया है। दुग्ध, घृत, खाँड, मक्खन, मिश्री, मधु सोंठ, परवल, फल आदि पथ्य हैं।[१२] कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, लवण, उष्ण, हरे शाक, काँजी, तैल, तिल, सरसों, मदिरा, मत्स्य, बकरी का मांस, दही, मट्ठा, कुलथि, बेर, खल, हींग आदि पदार्थ योगियों के लिए अपथ्य कहे गए हैं।[१३] अग्नि पर दुबारा गर्म किया गया अन्न, रूखे या अत्यन्त लवण और अम्ल युक्त पदार्थ एवं कुत्सित अन्न के आहार का निषेध किया गया है।[१४] अतः योगाभ्यासियों को उपयुक्त आहार तथा उचित स्थान का चयन करके सभी प्रकार की चिन्ताओं का त्याग करके गुरु द्वारा उपदिष्ट विधि से हठयोग का अभ्यास करना चाहिए।

शोधछात्र, वी०वी०बी०आई०एस०एण्ड आई०एस०, साधु आश्रम, होशियारपुर।

५. योगशिखोपनिषद्, १.१३३। ६. हठयोगप्रदीपिका, १.१२-१३। ७. श्वेताश्वेतरोपनिषद्, २.१०। ८. गीता, ६.११-१२। ९. घेरण्डसंहिता, ५.६-७। १०. योगतत्त्वोपनिषद्, ३२,३५। ११. घेरण्डसंहिता, ५.१६। १२. हठयोगप्रदीपिका, १.६४। १३. तदेव, १.६१। १४. तदेव, १.६२-६३।

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान –

श्री भाग मल महाजन ३०००/-
चेरीटेवल ट्रस्ट
महाजन कम्पाऊँड,
विखरोली वेस्ट, मुम्बई।

श्रीमती आशा महेन्द्रा सेठ २१००/-
१- बी आऊट राम स्ट्रीट,
कलकत्ता।

श्री महेश शर्मा ३०,०००/-
(पुत्र स्वर्गीय पण्डित भीमदेव जी शास्त्री)
२०२३८, आरमिन्टा स्ट्रीट,
विनैटा सी.ए. ९१३०६,
यू.एस.ए.

पुराने सदस्यों से शुल्क प्राप्ति-

प्रो० एन.के. डोगरा १०००/-
ए-२, पंजावी यूनिवर्सिटी
कैम्पस, पटियाला।

हवन-यज्ञ– विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। दिसम्बर 2016 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

बधाई- संचार मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकतर्त्री सभा एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के प्रधान आर्यरत्न डॉ० पूनम सूरी के चित्र तथा एच.एम.वी. के आवरणचित्र सहित डाक टिकट जारी किया गया। भारत सरकार द्वारा आर्यरत्न डॉ० पूनम सूरी जी के चित्र सहित डाक टिकट जारी करना उनके लिए तो गौरव की बात है ही, साथ ही डॉ० सूरी जी जिन-जिन संस्थाओं के प्रधान हैं उनके लिए भी परम गौरव की बात है। इसी परम्परा में विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान भी अपने को गौरवान्वित समझ रहा है। जिसको इस प्रकार के सर्वगुणसम्पन्न, न केवल संस्थानों द्वारा अपितु भारत सरकार द्वारा सम्मानित प्रधान प्राप्त हैं। अतः उन्हें संस्थान की ओर से शतशः वर्धापन है।

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

शोक समाचार– संस्थान के हितैषी व शुभचिन्तक इंग्लैण्ड निवासी **श्री के.के. शर्मा जी** का ६-१२-२०१६ को निधन हो गया। आप प्रतिवर्ष संस्थान की यथाशक्ति सहायता किया करते थे। आप एक अच्छे लेखक व धार्मिक व्यक्ति थे। आपने अपनी दो पुस्तकें- '*What is Salvation (Moksha) & Enlightens*' मोक्ष क्या है तथा प्रबोध क्या है' संस्थान से प्रकाशित की हैं, ये पुस्तकें आपके निर्देशनुसार देश-विदेश के विद्वानों को विभिन्न संस्थानों तथा लाइब्रेरियों को आप ही के खर्चे पर नि:शुल्क भेजी गईं। आपके निधन से संस्थान को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति सम्भव नहीं।

इस शोक के अवसर पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से सबंधित परिवार से हार्दिक सहानुभूति प्रकट की जाती है तथा परमात्मा से प्रार्थना है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

संस्थान के आजीवन सदस्य **श्री मनमोहन सूद जी की धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा सूद** का होशियारपुर में देहान्त हो गया। आप एक धर्मपरायणा, कर्तव्यनिष्ट, परोपकारी महिला थीं। इस शोक के अवसर पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से शोकाकुल परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की जाती है तथा प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा शोकाकुल परविार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

दानवीर सेठ मुनिलाल जैन का शुक्रवार ८-१२-२०१६ को लुधियाना में देहान्त हो गया। आप एक धार्मिक, मिलनसार, दानवीर और लुधियाना के वरिष्ठ माननीय सदस्यों में गिने जाते थे। आप लुधियाना की सभी धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हुए थे तथा धार्मिक कृत्यों में सक्रिय रूप से भाग लिया करते थे। वी.वी.आर. संस्था के आप परम हितैषी तथा समय-समय पर यथाशक्ति सहायता रूप में धनराशि दिया करते थे। आपके जाने से एक अच्छे धार्मिक व्यक्ति की जो कमी हुई है वह पूरी हो सकनी असंभव है। स्वयं उनके द्वारा किए हुए जो सत्कार्य हैं उनके फल को देखते हुए स्पष्ट है कि परमपिता परमात्मा ने उनको अपनी शरण में ले लिया होगा। क्योंकि भगवान् ने स्वयं गीता में कहा है कि जो प्रतिपल मेरा ध्यान रखता है, मेरा स्मरण करता है, वह मेरा परमप्रिय होता है। सेठ मुनिलाल इन्हीं में से एक थे। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा शोकाकुल परविार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

www.thearyasamaj.org

विविध-समाचार

आर्य विद्वानों से अनुरोध- प्रतिवर्ष ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर टंकारा समाचार का ऋषि बोधांक प्रकाशित किया जाता है। आगामी बोधोत्सव २३,२४,२५ फरवरी २०१७ को समारोहपूर्वक आयोजित किया जा रहा है और इसी अवसर पर 'टंकारा समाचार' का **ऋषि बोधांक** प्रकाशित होगा।

सभी से प्रार्थना है कि आप अपने सारगर्भित अप्रकाशित लेख एवं कविता १५ जनवरी २०१७ तक भिजवाकर कृतार्थ करें। लेख वेद, स्वामी दयानन्द, योग स्वास्थ्य आदि एवं अन्य जनउपयोगी प्रेरणादायक विषयों पर ही सीमित हों। ऐसा निर्णय किया है कि प्रकाशनार्थ सामग्री टाईप की हुई दो या तीन पृष्ठों से अधिक न हो, तो सुविधाजनक रहेगा। आप प्रकाशनार्थ सामग्री ईमेल tankarasamachar@gmail.com पर **वॉकमेन चाणक्य** टाईप में कम्पोज करके भी भिजवा सकते हैं। इसके लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी रहूंगा।

अजय सहगल, सम्पादक, टंकारा समाचार,

ए-४१९ डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली-११००२४, चलभाष नं० ९८१००३५६५८

आर्य समाज सैक्टर २२-ए, चण्डीगढ़ में गुरुकुल स्थापना समारोह का हुआ भव्य आयोजन- अनेक गुरुकुलों के संचालक त्यागी, तपस्वी संन्यासी स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी के निर्देशन एवं डॉ० शिव कुमार शास्त्री के आचार्यत्व में संचालित होगा

चण्डीगढ़ की प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित आर्य समाज, सैक्टर २२-ए के प्रधान श्री सोमदत्त शास्त्री की प्रेरणा एवं प्रयास से आर्य समाज की कार्यकारिणी एवं साधारण सभा ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया है कि आर्य समाज के विशाल भवन में उपलब्ध लगभग ३० कमरे उपयोग में लाने के लिए यहां एक गुरुकुल संचालित किया जाए जिससे आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को और अधिक कार्य करने का अवसर प्राप्त होगा तथा आर्य समाज के विशाल भवन का सदुपयोग भी सुन्दर तरीके से हो सकेगा।

इस समारोह में सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी ने कहा कि देश-विदेश की समस्त आर्य-समाजें जिनके पास अच्छे भवन हैं तथा पर्याप्त स्थान है, यदि वे सब अपने समाजों में ऐसे गुरुकुल प्रारम्भ कर दें तो लाखों युवाओं को आर्य समाज की विचारधारा से जोड़ा जा सकता है। अत: यह आवश्यक है कि आर्य-समाजों में छोटे-छोटे गुरुकुल प्रारम्भ करके वहां से अच्छे कार्यकर्ता, प्रचारक, उपदेशक निकाले जा सकते हैं।

इस अवसर पर अनेक गुरुकुलों के संचालक स्वामी प्रणवानन्द स्वामी ने स्पष्ट किया कि जब तक हम आर्ष पाठविधि के अनुसार गुरुकुल नहीं चलाएँगे तब तक आर्य समाज का भविष्य सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। स्वामी जी ने घोषणा की कि इस गुरुकुल में शीघ्र ही दो दर्जन विद्यार्थी दाखिल कर दिए जाएँगे और यह गुरुकुल बहुत सुन्दर तरीके से चलेगा। उन्होंने कहा कि हमें डॉ० शिव कुमार शास्त्री जैसे आचार्य मिल गए हैं तो गुरुकुल शुरु होने में कोई कठिनाई नहीं आ सकती। मंच का संचालन समाज के प्रधान श्री सोमदत्त शास्त्री ने अत्यंत कुशलता एवं सुन्दर तरीके से धन्यवादपूर्वक सम्पन्न किया। आप सभी महानुभावों का सहयोग और सुझाव अपेक्षित है। धन्यवाद, भवदीय,

सोमदत्त शास्त्री (प्रधान) प्रेम चन्द गुप्ता (मन्त्री)
मो: ८७२५८००६५९ मो: ९२१६१९२३३६

www.thearyasamaj.org

श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी

(वर्ष २०१७ का विशेषांक अप्रैल-मई , जून-जुलाई)

विशेष - सुविधा के लिए विशेषांक से सम्बन्धित कुछ-एक शीर्षक प्रस्तुत हैं। किन्तु आप शीर्षक चुनने में स्वतन्त्र हैं।

१. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: जीवन वृत्तान्त/ वह प्रगटियो मरद अगम्मड़ा वरियाम अकेला
२. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ।
३. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: एक युग-व्यक्तित्व/युग की महान् विभूति
४. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: जीवन-उद्देश्य/आगमन-प्रयोजन
५. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: राष्ट्रीय लक्ष्य/राष्ट्र-निर्माता
६. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: राष्ट्रीय एकता के अग्रदूत/राष्ट्रीय-भावना के उद्दीपक।
७. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: मानव-स्वतन्त्रता के अग्रदूत
८. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: भारतीय समाज की स्वरूप-संकल्पना
९. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: आध्यात्मिक दर्शन
१०. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: दार्शनिक चिन्तन
११. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: सांस्कृतिक चेतना
१२. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: भक्ति और शक्ति/भक्ति-भावना का स्वरूप
१३. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: जीवन-दर्शन एवं आदर्श
१४. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: मानवीय आदर्श
१५. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: खालसा-सृजना और अन्तर्निहित प्रयोजन
१६. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: अमृत-संचार.... मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण
१७. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: धार्मिक एवं राजनीतिक मिशन
१८. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: राजनीतिक कुशलता
१९. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: रण-बाँकुरा और पारदर्शी सिपाहसलार (सेनापति)
२०. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: साहित्य-सर्जन का आन्दोलन

www.thearyasamaj.org

२१. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: काव्य-प्रतिभा/वाग्विभूति
२२. श्री गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य का मूल स्वर
२३. श्री गुरु गोबिन्द सिंह के दरबारी कवि
२४. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: वीर-काव्य
२५. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: वीर-रस का स्वरूप
२६. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: एक भाषाविद् (Linguist)
२७ दशम ग्रन्थ: वाग्वैभव
२८. दशम ग्रन्थ की मूल चेतना
२९. जापु साहिब: स्वरूप-परिचय और इष्ट-महिमा
३०. बचित्र नाटक: स्वरूप तथा उस में इंगित जीवन-प्रयोजन
४०. जफ़रनामा : औरगंज़ेब पर मनोवैज्ञानिक प्रहार
४१. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: कथनी-करनी के सूरमे/जीवन तथा वाणी में तारतम्य
४२. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: निष्काम देश-भक्त
४३. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: महात्यागी एवं महाबलिदानी
४४. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: मानवीय आदर्श
४५. श्री गुरु गोबिन्द सिंह: बहुमुखी प्रतिभा/संत, सिपाही, साहित्यकार
४६. श्री गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य में सुभाषित-महिमा

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१२-२०१६ को प्रकाशित।